समाज के यथार्थ जीवन पर आधारित
बंगला के मर्म-स्पर्शी उपन्यास का
हिन्दी रूपान्तर

•

लेखक
सुनील गंगोपाध्याय
अनुवादक
सिद्धेश

•

प्रकाशकीय

'मंडल' से हमने अनेक उपन्यास प्रकाशित किये हैं। उनका चुनाव विशेष दृष्टि से किया गया है। हमारी इच्छा थी कि हिन्दी के साथ-साथ अपने देश की अन्य भाषाओं के भी चुने हुए उपन्यासों के अनुवाद हिन्दी के पाठकों को सुलभ करें, जिससे उन्हें पता चले कि भाषाओं की भिन्नता होते हुए भी समूचे भारत की आशाएं और आकांक्षाएं समान हैं और उस दृष्टि से देश की आत्मा एक और अखण्ड है।

इसी ध्येय को सामने रखकर हमने हिन्दी के साथ-साथ मराठी, गुजराती, बंगला, तेलुगु, पंजाबी, कन्नड़ आदि-आदि भाषाओं के उपन्यास प्रकाशित किये हैं। कुछ अंतर्राष्ट्रीय ख्याति के विदेशी उपन्यासकारों की कृतियों के भी रूपान्तर निकाले हैं। हमें यह कहते हुए बड़ा हर्ष होता है कि हिन्दी के पाठकों ने इन उपन्यासों को बहुत पसंद किया है। अधिकांश उपन्यासों के एकाधिक संस्करण हुए हैं, इससे उनकी लोकप्रियता का अनुमान किया जा सकता है।

प्रस्तुत उपन्यास उसी शृङ्खला की एक कड़ी है। बंगला के लब्धप्रतिष्ठ उपन्यासकार ने इस कृति में सामाजिक जीवन के कुछ पात्रों को लेकर इसका ताना-बाना बुना है। वस्तुतः ऐसे पात्र संसार-रूपी सागर में लहरों के बीच आलोड़ित होते रहते हैं। वे सामान्य व्यक्तियों से कुछ अलग होते हैं। यही कारण है कि वे परम्परागत मान्यताओं को स्वीकार नहीं कर पाते। इस उपन्यास के प्रायः सभी पात्र हमारे समाज में मिलते हैं, लेकिन वे बने-बनाये संकीर्ण ढांचे में ढलने को तैयार नहीं होते और समाज में उथल-पुथल पैदा कर देते हैं।

बंगला के हमने और [illegible] उपन्यास प्रकाशित किये हैं। सुविख्यात बंगला-लेखक श्री मनोज वसु की कृति 'नवीन यात्रा' की तो पाठकों के मन पर गहरी छाप पड़ी है। पर यह उपन्यास उन उपन्यासों से भिन्न है। इसकी कथा-वस्तु, इसकी शैली और इसका परिवेश अपने ढंग का है। मूल बंगला में यह उपन्यास 'जीवन जे रकम' नाम से छपा है।

हम आशा करते हैं कि पाठक इस कृति को चाव से पढ़ेंगे। इस माला में और भी कुछ उपन्यास पाठकों को शीघ्र ही प्राप्त होंगे।

लहरों के बीच

१

अगर थोड़ी देर और हो जाती तो तार दीपू को मिलता ही नहीं। वह दाल के साथ भात सानकर दो कौर ही खा पाया था कि तभी तार लेकर तारवाला आया। वह खाकर फौरन बाहर निकल पड़ना चाहता था। दो बजकर बीस मिनट पर चक्रधरपुरवाली बस छूटती थी। फिर वहां से ट्रक से 'हेसाडी' के डाकबंगले तक जाना था, पर वहां का पता किसी को मालूम नहीं था।

अरूप को लगा कि तार उसका है। इसलिए खाना छोड़कर उसने ही दस्तखत करके तार लिया। पिछले आठ दिनों में चाइबासा में रहते हुए उसे तीन चिट्ठियां मिल चुकी थीं, दीपू को एक भी नहीं मिली थी। एकदम से सीधा तार आ पहुंचा! तार के हाथ में आते ही डर लगता है। अरूप को भी लगा। उसका लिफाफा फाड़कर एक नजर में ही देख गया, फिर सूखे गले से बोला, "दीपू, तार तुम्हारा है।"

दीपू हंस रहा था। आश्चर्य से चीख पड़ा, "क्या! मेरे नाम तार! लगता है, मेरे नाम लाटरी निकल आई!"

मगर यह कहते हुए उसने अनुभव किया कि लॉटरी की बात संभव नहीं है। उसने आजतक कभी लॉटरी का टिकट ही नहीं खरीदा। उसने तार बाएं हाथ में लेकर उसपर नजरडाल ली। दाहिने हाथ में उसके तला हुआ बैंगन का टुकड़ा था। अरूप से बोला, "मेरे पिताजी? कभी देखा नहीं तुमने—छियासठ साल से ऊपर हैं, मगर रोज सुबह दो मील टहलते हैं। फुलाए हुए डेढ़ पाव चने उनको चाहिए। अरे, किसी पर बायें हाथ का भी थप्पड़ पड़ जाय तो··· (कुछ रुककर, स्वगत)···वह हठात बीम

बंगला के हमने और भी उपन्यास प्रकाशित किये हैं। सुविख्यात बंगला-लेखक श्री मनोज वसु की कृति 'नवीन यात्रा' को तो पाठकों के मन पर गहरी छाप पड़ी है। पर यह उपन्यास उन उपन्यासों से भिन्न है। इसकी कथा-वस्तु, इसकी शैली और इसका परिवेश अपने ढंग का है। मूल बंगला में यह उपन्यास 'जीवन जे रकम' नाम से छपा है।

हम आशा करते हैं कि पाठक इस कृति को चाव से पढ़ेंगे। इस माला में और भी कुछ उपन्यास पाठकों को शीघ्र ही प्राप्त होंगे।

—मंत्री

लहरों के बीच

१

अगर थोड़ी देर और हो जाती तो तार दीपू को मिलता ही नहीं। वह दाल के साथ भात सानकर दो कौर ही खा पाया था कि तभी तार लेकर तारवाला आया। वह खाकर फौरन बाहर निकल पड़ना चाहता था। दो बजकर बीस मिनट पर चक्रधरपुरवाली बस छूटती थी। फिर वहां से ट्रक से 'हेसाडी' के डाकबंगले तक जाना था, पर वहां का पता किसी को मालूम नहीं था।

अरूप को लगा कि तार उसका है। इसलिए खाना छोड़कर उसने ही दस्तखत करके तार लिया। पिछले आठ दिनों में चाइबासा में रहते हुए उसे तीन चिट्ठियां मिल चुकी थीं, दीपू को एक भी नहीं मिली थी। एकदम से सीधा तार आ पहुंचा! तार के हाथ में आते ही डर लगता है। अरूप को भी लगा। उसका लिफाफा फाड़कर एक नजर में ही देख गया, फिर सूखे गले से बोला, "दीपू, तार तुम्हारा है।"

दीपू हंस रहा था। आश्चर्य से चीख पड़ा, "क्या! मेरे नाम तार! लगता है, मेरे नाम लाटरी निकल आई!"

मगर यह कहते हुए उसने अनुभव किया कि लॉटरी की बात संभव नहीं है। उसने आजतक कभी लॉटरी का टिकट ही नहीं खरीदा। उसने तार बाएं हाथ में लेकर उसपर नजरडाल ली। दाहिने हाथ में उसके तला हुआ बैंगन का टुकड़ा था। अरूप से बोला, "मेरे पिताजी? कभी देखा नहीं तुमने—छियासठ साल से ऊपर हैं, मगर रोज सुबह दो मील टहलते हैं। फुलाए हुए डेढ़ पाव चने उनको चाहिए। अरे, किसी पर बायें हाथ का भी थप्पड़ पड़ जाय तो··· (कुछ रुककर, स्वगत)···वह हठात् बीमार पड़

तरह बीमारी की बात कही जाती है। इसीलिए मैं तुमसे कह रहा था।"

"तुम्हारे माता-पिता दोनों जिंदा हैं। तुम्हें इस चीज का कैसे पता है?"

"तुम जिस तरह से बेफिकर होकर बैठे हो, मुझे पता है!"

"तो क्या पूरा खाये बिना ही उठकर चल दूं? अभी तो ट्रेन भी नहीं है।"

परमेश दफ्तर गया है। बात तय थी कि बस के अड्डे पर आकर वह मित्रों को चक्रधरपुर के लिए विदाई देगा। हाथ धो लेने के बाद दीपू ऊंचे स्वर में बोला, "परमेश बस के पास अकेला ही खड़ा रह जायगा। तुम साइकिल से जरा चले जाओ न।"

अरूप बोला, "मैं अकेला ही जाऊं?"

"तुरंत खाकर भरे पेट कहीं साइकिल पर दो को ले जाया जाता है? तुम अकेले ही जाओ।"

"तुम कलकत्ता नहीं जाओगे?"

"अभी टाटानगर के लिए कोई बस नहीं है। मैं जानता हूं। तबतक मैं थोड़ा सो लूं।"

दीपू को आइने के सामने बाल संवारते हुए अरूप तिरछी निगाह से देखता रहा। सोने जाने के पहले कौन बाल संवारता है! अरूप मन-ही-मन झुंझलाया। हद है इस दीपू की! किन्तु इस तरह का तार आने के कारण अरूप ने दीपू से कुछ नहीं कहा। दीपू ने कमीज बदन पर डाल ली। कायदे से बाल संवारकर परमेश के बिस्तर पर लेटते हुए वह बोला, "जाओ, तुम बाहर हो जाओ। परमेश से कहना कि दफ्तर से उठकर सीधे घर चला आवे।"

घर खाली है। परमेश के दफ्तर का चपरासी सबेरे खाना बनाकर परमेश के जाने के पहले ही काम पर चला जाता है। दालान के पास बने हुए कुएं से बाहर के लोग प्रायः पानी भरने आ जाते हैं। आदिवासी महिलाएं एक-दूसरे पर पानी के छींटे डालकर खिलखिला कर हंसती रहती

हैं। उन्हें मजा आता है। आज कुएं के आसपास कोई नहीं है। दूर से सिर्फ पानी के इंजन की आवाज आ रही है—घस्स···घस्स···

दीपू ने आंखें बंद कर लीं। आंखें बंद करते ही मानों आइने के सामने उसका अपना चेहरा आ गया। लोगों का कहना है कि उसका चेहरा पिताजी से बहुत मिलता-जुलता है। अपने भाई-बहनों में उसीको अपने पिताजी का चेहरा मिला है। पर दीपू स्वयं इसको स्वीकार कर नहीं पाता। हालांकि इंसान अपना चेहरा आइने में सीधे-सीधे एक बार ही देख पाता है। मगर अपने पिता को कई तरह से देखता है, अनेक भावों के बीच। पिताजी का विशाल शरीर है, लंबा-चौड़ा। गले की आवाज भी कुछ भारी है। दीपू को याद नहीं पड़ता कि उसने पिताजी को कभी बीमार होकर बिस्तरपर पड़े देखा हो। वह मन-ही-मन सोचता है—नहीं, पिताजी को सहज ही कोई बीमारी छू नहीं सकती। उसने आंखों के सामने देखा कि हेसाडी डाकबंगले के सामने पिताजी गुस्से में भरकर चहलकदमी कर रहे हैं। पिताजी की इच्छा नहीं थी कि वह यहां आये। वह उसे यहां आने ही नहीं दे रहे थे। कोई कारण नहीं, फिर भी कह रहे थे—नहीं, अभी हठात् बाहर घूमने जाने की क्या जरूरत है! किंतु बाहर घूमना हठात् ही होता है, जैसे कि हठात् बीमारी हो जाती है। इसको पिताजी कभी नहीं समझ सकेंगे। इसीसे मजबूर होकर उसे झूठ का सहारा लेना पड़ा था!

खबर मिलते ही परमेश भागता हुआ चला आया। तार मांगकर देखने के बाद दीपू से बोला, "बक्सा-बक्सा ठीक कर लो। मैं दफ्तर की तरफ से एक जीप का इंतजाम करता हूं। जमशेदपुर चले जाओ। वहीं से साढ़े पांच बजे ट्रेन भी मिल जायगी। कलकत्ता पौने ग्यारह बजे तक पहुंच जाओगे।"

"क्यों, बस से नहीं?"

"लाल कंपनी की बस तो साढ़े सात बजे छूटती है। उससे जाने पर, रात को डेढ़ बजे के बाद गाड़ी नहीं है।"

दीपू अरूप की तरफ ताककर बोला, "तुम तो पिता की अकेली संतान हो। तुम्हारी समझ में यह सब बात नहीं आयेगी।"

परमेश बोला, "चाहे जो हो, डाक्टर-वाक्टर को बुलाने-दिखाने में तो शायद कोई असुविधा नहीं होगी।"

दीपू अपने अंदर के गर्व को छिपा नहीं सका। छाती में ढेर सारी सांस खींचकर बोला, "मेरे अपने मौसा हीकलकत्ता में प्रसिद्ध डाक्टर हैं। एक मरतबा मरीज को देखने जाने के चौसठ रुपये लेते हैं। डाक्टर आर० पी० सरकार! नाम सुना होगा?"

उन लोगों ने इस बात पर कोई ध्यान नहीं दिया। परमेश बोला, "तुमने मन में यह सोच रखा होगा कि अगर तुम्हारे पिताजी को कुछ हो गया—हो ही गया है, यह नहीं कह रहा—अगर हो जाय, उम्र भी तो हो गई है, तब तुम क्या करोगे? यानी मैं पैसे की कठिनाई की बात कह रहा हूं। तब तो तुम्हारे ऊपर ही इतनी सारी जिम्मेदारी आ पड़ेगी।"

दीपू हठात् कुछ उखड़-सा गया। एक हाथ ऊंचा करके थोड़ा जोर से बोला, "रहने दो, रहने दो।"

"मैं तो योंही कह रहा था।" परमेश बोला, "सभी को तो एक दिन घर-बार की जिम्मेदारी···।"

"ठीक है। हो सकता है, मेरे पिताजी अबतक चल बसे हों या भयानक बीमारी से जूझ रहे हों। हो सकता है, ठीक हो गए हों—इन तीनों में से एक ही तो होगा। यहां से मैं कुछ भी नहीं करपा रहा हूं। बेकार की बातों से क्या फायदा?"

इतना कहकर वह चुप हो गया।

आज हर इंसान मनोविज्ञान के पीछे पड़ा है। परमेश भी दीपू की इस मनःस्थिति का विश्लेषण करने लगा और इसी निर्णय पर पहुंचा कि हठात् पिताजी की बीमारी का तार पाकर दीपू को बड़ा धक्का लगा है, किंतु वह सब-कुछ भीतर पी जाता है, बाहर प्रकाश में कुछ भी नहीं आने देता। उसको अंदर-ही-अंदर पड़े रहने देना क्या ठीक रहेगा?

दरअसल दीपू उस समय अरूप के वारे में सोच रहा था। अरूप के उद्विग्न चेहरे की तरफ देखकर लगा था कि अरूप उसके वारे में वहुत हैरान हो उठा है, यानी अरूप सोच रहा है कि दीपू की तरह यदि मेरे ऊपर ऐसी वीतती, यदि मेरे पिताजी की वीमारी का हठात् तार आता तव मैं संभव था, और भी हैरानी अनुभव करता।

अरूप काफी धनी परिवार का है। भरा-पूरा परिवार है। महीने में एक वार अरूप के पिता के स्वास्थ्य की परीक्षा करने डाक्टर आते हैं। दीपू जो मौसा को लेकर गर्व कर रहा था, थोड़ा सिर दर्द करने पर ही उस तरह के डाक्टर को अरूप के पिता जब चाहें वुला सकते हैं। अरूप के पिता की मृत्यु के वाद भी, अधिक-से-अधिक अरूप की शादी एक वर्ष के लिए टल सकती है।

२

उनको पहुंचाने के लिए परमेश आया था। गहरी लाल रंग की डी-लक्स वस, ठीक साढ़े सात वजे छूटती है, किंतु उस दिन वह पैंतीस मिनट देर तक भी नहीं छूटी। रूंगटा-परिवार का एक नौकर इसी वस से टाटा-नगर वर्फ लाने जायगा, वह अवतक नहीं आया है। रूंगटा इस इलाके के राजा-महाराजा से भी अधिक प्रतापशाली हैं। उनके नौकर की अवहेलना कौन करेगा ? परमेश इस वात पर ड्राइवर से लड़ वैठा। वह भी सरकारी अफसर है, वह अपना प्रताप भी दिखाना चाहता है।

हालांकि आधीरात से पहले कोई गाड़ी नहीं है और वस से टाटानगर तक पहुंचने में अधिक-से-अधिक दो घंटा लगेगा। दीपू विना उत्तेजित हुए सहज भाव से खिड़की के पास माथा टेककर वैठा था। परमेश अकेला पड़

दीपू अरूप की तरफ ताककर बोला, "तुम तो पिता की अकेली संतान हो। तुम्हारी समझ में यह सब बात नहीं आयेगी।"

परमेश बोला, "चाहे जो हो, डाक्टर-वाक्टर को बुलाने-दिखाने में तो शायद कोई असुविधा नहीं होगी।"

दीपू अपने अंदर के गर्व को छिपा नहीं सका। छाती में ढेर सारी सांस खींचकर बोला, "मेरे अपने मौसा ही कलकत्ता में प्रसिद्ध डाक्टर हैं। एक मरतबा मरीज को देखने जाने के चौसठ रुपये लेते हैं। डाक्टर आर० पी० सरकार! नाम सुना होगा?"

उन लोगों ने इस बात पर कोई ध्यान नहीं दिया। परमेश बोला, "तुमने मन में यह सोच रखा होगा कि अगर तुम्हारे पिताजी को कुछ हो गया—हो ही गया है, यह नहीं कह रहा—अगर हो जाय, उम्र भी तो हो गई है, तब तुम क्या करोगे? यानी मैं पैसे की कठिनाई की बात कह रहा हूं। तब तो तुम्हारे ऊपर ही इतनी सारी जिम्मेदारी आ पड़ेगी।"

दीपू हठात् कुछ उखड़-सा गया। एक हाथ ऊंचा करके थोड़ा जोर से बोला, "रहने दो, रहने दो।"

"मैं तो योंही कह रहा था।" परमेश बोला, "सभी को तो एक दिन घर-बार की जिम्मेदारी···।"

"ठीक है। हो सकता है, मेरे पिताजी अबतक चल बसे हों या भयानक बीमारी से जूझ रहे हों। हो सकता है, ठीक हो गए हों—इन तीनों में से एक ही तो होगा। यहां से मैं कुछ भी नहीं कर पा रहा हूं। बेकार की बातों से क्या फायदा?"

इतना कहकर वह चुप हो गया।

आज हर इंसान मनोविज्ञान के पीछे पड़ा है। परमेश भी दीपू की इस मनःस्थिति का विश्लेषण करने लगा और इसी निर्णय पर पहुंचा कि हठात् पिताजी की बीमारी का तार पाकर दीपू को बड़ा धक्का लगा है, किंतु वह सब-कुछ भीतर पी जाता है, बाहर प्रकाश में कुछ भी नहीं आने देता। उसको अंदर-ही-अंदर पड़े रहने देना क्या ठीक रहेगा?

दरअसल दीपू उस समय अरूप के बारे में सोच रहा था। अरूप के उद्विग्न चेहरे की तरफ देखकर लगा था कि अरूप उसके बारे में बहुत हैरान हो उठा है, यानी अरूप सोच रहा है कि दीपू की तरह यदि मेरे ऊपर ऐसी बीतती, यदि मेरे पिताजी की बीमारी का हठात् तारआता तब मैं संभव था, और भी हैरानी अनुभव करता।

अरूप काफी धनी परिवार का है। भरा-पूरा परिवार है। महीने में एक बार अरूप के पिता के स्वास्थ्य की परीक्षा करने डाक्टर आते हैं। दीपू जो मौसा को लेकर गर्व कर रहा था, थोड़ा सिर दर्द करने पर ही उस तरह के डाक्टर को अरूप के पिता जब चाहें बुला सकते हैं। अरूप के पिता की मृत्यु के बाद भी, अधिक-से-अधिक अरूप की शादी एक वर्ष के लिए टल सकती है।

२

उनको पहुंचाने के लिए परमेश आया था। गहरी लाल रंग की डी-लक्स बस, ठीक साढ़े सात बजे छूटती है, किंतु उस दिन वह पैंतीस मिनट देर तक भी नहीं छूटी। रूंगटा-परिवार का एक नौकर इसी बस से टाटा-नगर बर्फ लाने जायगा, वह अबतक नहीं आया है। रूंगटा इस इलाके के राजा-महाराजा से भी अधिक प्रतापशाली हैं। उनके नौकर की अवहेलना कौन करेगा ? परमेश इस बात पर ड्राइवर से लड़ बैठा। वह भी सरकारी अफसर है, वह अपना प्रताप भी दिखाना चाहता है।

हालांकि आधीरात से पहले कोई गाड़ी नहीं है और बस से टाटानगर तक पहुंचने में अधिक-से-अधिक दो घंटा लगेगा। दीपू बिना उत्तेजित हुए सहज भाव से खिड़की के पास माथा टेककर बैठा था। परमेश अकेला पड़

दीपू अरूप की तरफ ताककर बोला, "तुम तो पिता की अकेली संतान हो। तुम्हारी समझ में यह सब बात नहीं आयेगी।"

परमेश बोला, "चाहे जो हो, डाक्टर-बाक्टर को बुलाने-दिखाने में तो शायद कोई असुविधा नहीं होगी।"

दीपू अपने अंदर के गर्व को छिपा नहीं सका। छाती में ढेर सारी सांस खींचकर बोला, "मेरे अपने मौसा ही कलकत्ता में प्रसिद्ध डाक्टर हैं। एक मरतबा मरीज को देखने जाने के चौसठ रुपये लेते हैं। डाक्टर आर० पी० सरकार! नाम सुना होगा?"

उन लोगों ने इस बात पर कोई ध्यान नहीं दिया। परमेश बोला, "तुमने मन में यह सोच रखा होगा कि अगर तुम्हारे पिताजी को कुछ हो गया—हो ही गया है, यह नहीं कह रहा—अगर हो जाय, उम्र भी तो हो गई है, तब तुम क्या करोगे? यानी मैं पैसे की कठिनाई की बात कह रहा हूं। तब तो तुम्हारे ऊपर ही इतनी सारी जिम्मेदारी आ पड़ेगी।"

दीपू हठात् कुछ उखड़-सा गया। एक हाथ ऊंचा करके थोड़ा जोर से बोला, "रहने दो, रहने दो।"

"मैं तो योंही कह रहा था।" परमेश बोला, "सभी को तो एक दिन घर-बार की जिम्मेदारी···।"

"ठीक है। हो सकता है, मेरे पिताजी अबतक चल बसे हों या भयानक बीमारी से जूझ रहे हों। हो सकता हैं, ठीक हो गए हों—इन तीनों में से एक ही तो होगा। यहां से मैं कुछ भी नहीं कर पा रहा हूं। बेकार की बातों से क्या फायदा?"

इतना कहकर वह चुप हो गया।

आज हर इंसान मनोविज्ञान के पीछे पड़ा है। परमेश भी दीपू की इस मनःस्थिति का विश्लेषण करने लगा और इसी निर्णय पर पहुंचा कि हठात् पिताजी की बीमारी का तार पाकर दीपू को बड़ा धक्का लगा है, किंतु वह सब-कुछ भीतर पी जाता है, बाहर प्रकाश में कुछ भी नहीं आने देता। उसको अंदर-ही-अंदर पड़े रहने देना क्या ठीक रहेगा?

दरअसल दीपू उस समय अरूप के बारे में सोच रहा था। अरूप के उद्विग्न चेहरे की तरफ देखकर लगा था कि अरूप उसके बारे में बहुत हैरान हो उठा है, यानी अरूप सोच रहा है कि दीपू की तरह यदि मेरे ऊपर ऐसी बीतती, यदि मेरे पिताजी की बीमारी का हठात् तारआता तब मैं संभव था, और भी हैरानी अनुभव करता।

अरूप काफी धनी परिवार का है। भरा-पूरा परिवार है। महीने में एक बार अरूप के पिता के स्वास्थ्य की परीक्षा करने डाक्टर आते हैं। दीपू जो मौसा को लेकर गर्व कर रहा था, थोड़ा सिर दर्द करने पर ही उस तरह के डाक्टर को अरूप के पिता जब चाहें बुला सकते हैं। अरूप के पिता की मृत्यु के बाद भी, अधिक-से-अधिक अरूप की शादी एक वर्ष के लिए टल सकती है।

२

उनको पहुंचाने के लिए परमेश आया था। गहरी लाल रंग की डी-लक्स बस, ठीक साढ़े सात बजे छूटती है, किंतु उस दिन वह पैंतीस मिनट देर तक भी नहीं छूटी। रूंगटा-परिवार का एक नौकर इसी बस से टाटा-नगर बर्फ लाने जायगा, वह अबतक नहीं आया है। रूंगटा इस इलाके के राजा-महाराजा से भी अधिक प्रतापशाली हैं। उनके नौकर की अवहेलना कौन करेगा ? परमेश इस बात पर ड्राइवर से लड़ बैठा। वह भी सरकारी अफसर है, वह अपना प्रताप भी दिखाना चाहता है।

हालांकि आधीरात से पहले कोई गाड़ी नहीं है और बस से टाटानगर तक पहुंचने में अधिक-से-अधिक दो घंटा लगेगा। दीपू बिना उत्तेजित हुए सहज भाव से खिड़की के पास माथा टेककर बैठा था। परमेश अकेला पड़

वार नौकरी कर रहा था। वहां मैंने चोरी की थी। इसी बात पर नौकरी चली गई।"

"धत्!"

"तुम विश्वास नहीं करते? चोरी करना अनाचार है, तुम यह कहोगे ही, किंतु एक वार चोरी करने की इच्छा हुई थी, बड़े जोर की इच्छा हुई थी—यह जानने के लिए कि अनाचार करने के वाद कैसा लगता है..."

अरूप का चेहरा पीला पड़ गया। उसके कान के पास मुंह करके दीपू ने कुछ कहा, मानो कोई खास रहस्यमय वात हो, इस तरह से दीपू बोल रहा था—"वी० कॉम० पास करने के वाद मैंने दासगुप्त एंड सेनगुप्त फर्म में कुछ दिन के लिए काम कर लिया। वह वहुत बड़ा चार्टर्ड एकाउंटेन्सी का फर्म था।"

"पता है। हमारी कंपनी में भी वे सव ऑडिट करने आते हैं।"

"प्रोफेसर दासगुप्त को पहचानते हो?"

"दो-एक वार देखा है उन्हें।"

"इस प्रोफेसर दासगुप्त के साथ मेरे मौसा की अच्छी दोस्ती है। नौकरी के लिएतो कोई चार हजाररुपये जमाकरने पड़तेहैं। मुझसे उन्होंने एक कौड़ी भी नहीं ली। एक वार मैं एक स्कूल में ऑडिट करने के सिल-सिले में वसीरहाट गया था। प्रोफेसर के साथ ही मैं क्लर्क के रूप में गया था। स्कूल के हिसाब में वड़ी गड़वड़ थी। हेडमास्टर साहव ने प्रोफेसर दासगुप्ता को डेढ़हजार रुपये कीघूस दी। घूस लेना-देना तो कोई नई वात नहीं, किंतु यह इतने सहज रूप से घट गया, यह मेरे लिए आश्चर्यजनक जरूर था। हेडमास्टर के साथ पहले क्या वातें हुई थीं, यह नहीं जानता, वे यों ही कमरे में आकर वोले, "मच्छरों के कारण आप लोगों को कल सोने में तकलीफ तो नहीं हुई? शहर के हैं न आप लोग...।" कहते-कहते उन्होंने एक लिफाफा मेज पर रख दिया। प्रोफेसर दासगुप्ता हंसते-हंसते वोले, "मनुष्य को मारने के इतने सारे हथियार निकले हैं, मगर आजतक मच्छर मारने के लिए कुछ भी नहीं निकला।"

प्रोफेसर ने अन्यमनस्क रूप से ही लिफाफा उठाकर जेब में रख लिया। मच्छर पर बातें होते-होते डेढ़ हजार रुपये किस तरह इधर-से-उधर हो गए, यह मेरी समझ के परे था।

"लिफाफे के अन्दर क्या है, इसको जानने के लिए रात में गाड़ी से लौटते हुए उसे मैंने दासगुप्ता की जेब से निकाल लिया। उस समय वह सो रहे थे। पांच-पांच के डेढ़ हजार रुपये के नोट थे।

"उस समय मुझे लगा था, एम०ए०, बी०टी० पास हेडमास्टर अमरीका से डिग्री भी ले आये हैं, प्रोफेसर दासगुप्ता, युनिवर्सिटी में पढ़ाते हैं। मैं क्या इन लोगों से अलग हूं ? तुम तो जानते ही हो, प्रोफेसर दासगुप्ता देखने में देवता सरीखे लगते हैं। किसी के भी साथ बुरा व्यवहार नहीं करते। हेड-मास्टर भी अच्छे ही लगे थे। फिर भी वह घूस लेते हैं, वे जैसा कर रहे हैं, उसी तरह से करने में मुझे कैसा लगता है, इस बात को देखने के लिए मैंने साढ़े सात सौ रुपये लिये थे।"

मानो अपनी आंखों से भूत देख लिया हो, इस तरह उसीकी तरफ हत्बुद्ध-सा अरूप देखे जा रहा था। उसका मन बड़ा कोमल है। रुपये-पैसों को वह कभी विशेष महत्त्व नहीं देता। दीपू के साथ इस यात्रा में निकलने के बाद उसका एक भी पैसा खर्च नहीं होने दिया है। कुछ सौ रुपयों के लिए दीपू ऐसा कर सकता है, उसको रत्ती-भर भी विश्वास नहीं होता।

मुस्कराते हुए दीपू बोला, "असल में मुझसे भूल क्या हुई, जानते हो ? नहीं तो मेरे ही सामने मुझे चोर कहने का साहस प्रोफेसर दासगुप्ता को नहीं होता। मेरे पारिवारिक संबंधों की भी तो बात थी न ! किंतु उन रुपयों को लेने के बाद क्या करूंगा, यही मैं नहीं समझ सका। दहकती हुई आग की तरह उन रुपयोंको अपने पास रख नहीं पा रहा था। मैंने पिताजी को सबकुछ बता दिया। उसके बाद•••अच्छा रहने दो।"

"क्यों ? लगता है, तुम्हारे पिताजी ! •••

"अरे, छोड़ो उसे, काफी झमेलेवाली बात है। रहने दो। अच्छा

अरूप, तुम्हारी कंपनी से भी प्रोफेसर दासगुप्ता को घूस दी जाती है न ?"

"नहीं, बिल्कुल नहीं।"

दीपू खिड़की की तरफ मुंह किये हुए मानो बाहर अंधकार में कुछ ढूंढ़ने लगा।

एक्सप्रेस बस तेजी से भागी जा रही है। अब किसी जगह भी नहीं रुकेगी। अंधकार में भी बीच-बीच में गहरे या उथले पोखरे का पानी झिलमिला उठता है। दूर के गांव की रोशनी टिमटिमाती है। आसमान में एक तरफ बस एक बादल का टुकड़ा है, बाकी में तारे टिमटिमा रहे हैं।

हठात् बस रुक गई। लगा, जैसे एक साथ हजार-हजार पक्षियों की आवाज सुनाई पड़ने लगी हो। सचमुच, पक्षियों की आवाज-जैसी ही लगी थी दीपू को। शायद वह थोड़ी तंद्रा में डूबा हुआ था। दरअसल वे लगभग अड़तीस लड़कियां थीं। हलूद पुकुर की लड़कियां !

स्कूल की बस एक तरफ जमीन में धंसी पड़ी है। थोड़ी-सी सावधानी से ही इतनी भयंकर दुर्घटना से ये बच गईं। टाटानगर से लड़कियां पिकनिक पर आई थीं। वापसी में यह घटना हो गई। लड़कियों ने ही रास्ते के बीच खड़ी होकर चिल्लाते हुए बस रुकवाई थी। पूरी तरह रुकने के पहले ही वे सब तेजी से बस में चढ़ आईं। थोड़ी देर पहले बस के उलटने से जो नाश-लीला होती, उसका सामना कर चुकी थीं। मगर लगा, मृत्यु कोई हंसी-तमाशा रही हो। अब वे हंसती-खिलखिलातीं, उसी घटना के बारे में बहस कर रही थीं।

तीन-चार सीटें ही खाली थीं। बाकी किसीने भी उठकर जगह नहीं दी। लगता है, ये सब किसी मिशनरी स्कूल की लड़कियां हैं। सभी संभ्रांत परिवार की हैं, बदन की गठी और स्वस्थ थीं। ज्यादातर खूबसूरत भी थीं। तीन शिक्षिकाओं ने दरवाजे के सामने खड़े होकर उन्हें गिना। साथ में एक भी मर्द नहीं था, फिर भी वे असहाय नहीं मालूम होती थीं। सभी लड़कियों की एक-सी नीली पोशाक थी। देखने से आंखें तृप्त हो जाती थीं।

अरूप ने कहा, "हम उठ जायं, उन्हें बैठने दें।"

दीपू उठते हुए दो लड़कियों से बोला, "आप यहां बैठिये।"

ऊंची कक्षा की लड़कियां हैं। उम्र ही कितनी होगी? यही पंद्रह-सोलह साल। किन्तु ऐसी उम्र में लड़कियां 'आप' का संबोधन पाकर मन-ही-मन खुश होती हैं, यह दीपू जानता है। उनमें बेकार की लज्जा नहीं है। इस बीच उनमें से जिस लड़की को जहां जगह मिली, बैठ गई। जिन सीटों पर एक-एक आदमी बैठा था, उनपर वे जम गईं।

पर जिन दो लड़कियों से दीपू ने बैठने को कहा, वे बोलीं, "नहीं-नहीं, आप बैठे रहिए। हम खड़ी-खड़ी ही जा सकती हैं।"

दीपू ने बड़े आदर से कहा, "भला, ऐसा भी होता है कि हम बैठ जायं और आप खड़ी रहें? बैठिए न।"

बस में दीपू और अरूप की उम्र का और कोई नहीं था। इसलिए दोनों लड़कियां उनके प्रति कुछ संकोच में थीं। पर आग्रह होने पर वे विरोध न कर सकीं। बैठ गईं। उसके बाद सिकुड़कर थोड़ी जगह खाली कर दी, बोलीं, आप भी बैठिए न।"

दीपू बिना अरूप की ओर ध्यान दिये बोला, "अच्छा!" बैठते हुए बोला, "हमारी यह बस अगर यहां न रुकती, तो आप लोग क्या करतीं? अब और दूसरी बस तो थी नहीं।"

दोनों लड़कियां एक-सी पोशाक पहने थीं। चेहरा भी प्रायः एक ही-सा था। दोनों गोरी थीं। आंखें, नाक-मुंह सबकुछ सुंदर था। एक लड़की ने कहा, "वाह, रुकती क्यों नहीं? हम बीच रास्ते में खड़ी हो गई थीं। हम सबों को कुचलकर बस थोड़े ही चली जाती?"

दूसरी बोली, "बस नहीं मिलती तो और मजा आता। हम सब सारी रात यहीं मजे में काट देतीं।"

दूसरी लड़की जो खिड़की से सटकर बैठी थी, दीपू को बड़ी अच्छी लगी थी। उसके पास बैठी लड़की की तरफ देखते हुए हंसकर दीपू बोला, "मैंने ही तो सबसे पहले आप सबों को देखा था और मैंने ही ड्राइवर से

कहा था, "गाड़ी रोको।"

पास बैठी लड़की बिना किसी हिचकिचाहट के बोली, "तब तो आपको धन्यवाद देना चाहिए।"

"दीपू की इच्छा हुई कि वह कहे कि धन्यवाद के बदले तुम खिड़की की उस तरफवाली लड़की को इस तरफ आ जाने दो, किंतु ऐसा कहा थोड़े ही जाता है! उस तरफवाली लड़की बोली, "हम सारी रात नहीं लौटतीं तो घरवाले चिंता करते।"

"करते तो करते! एक ही दिन की बात तो थी। सुबह तो लौट ही आते!"

"अगर डाकू आ जाते?" दीपू ने कहा।

"आ जाते तो उससे क्या होता! हम अड़तीस हैं।"

कलकत्ते की इन लड़कियों में कितना साहस है! दीपू का मन हुआ कि उस लड़की का हाथ पकड़ ले। किन्तु वह ऐसा नहीं कर सकता। थोड़ी देर पहले उसे लगा था कि उनके लिए सीट छोड़कर दूर खड़ा रहे। अब पास बैठकर इच्छा हो रही थी कि उनके कंधे पर हाथ रखे, उसके पतले मुलायम गाल पर अपनी अंगुली फिराये। उसके शरीर के स्पर्श से कितनी रोमांचक अनुभूति हो रही थी।

"आप दोनों के नाम क्या हैं?"

"हमको 'आप' क्यों कह रहे हैं? मेरा नाम है इरा बनर्जी, इसका लोपामुद्रा घोष।"

खिड़की के पासवाली लड़की का नाम इरा है। दीपू बिना किसी हिचकिचाहट के बोला, "इरा? मेरी एक मित्र थी, उसका नाम भी इरा था। देखने में तुम्हारी तरह ही थी।"

"थी? अब नहीं है क्या?"

"अब भी है, किंतु अब वह मेरी मित्र नहीं है।"

"तो इन दिनों आपकी मित्र का नाम क्या है?"

"आजकल एक भी मित्र नहीं है। मैंने निश्चय किया था कि इरा नाम

की किसी लड़की के न मिलने तक, किसी दूसरी के साथ मित्रता ही नहीं करूंगा।"

छोटी लड़कियां भी इन सब बातों का अर्थ समझती हैं। समझकर भी इसमें निहित संकेत की उपेक्षा नहीं कर सकतीं। अतः दोनों लड़कियां एक-दूसरे की ओर देखकर हंस पड़ीं। इसके बाद लोपामुद्रा ने पूछा, "आपका नाम क्या है?"

"मेरा नाम दीपांजन सरकार है। मेरे इस मित्र का नाम अरूप घोषाल है।"

"ओह, वे बैठे नहीं!"

अरूप खड़ा है। उसका चेहरा गंभीर है। लड़कियों की बातें सुनकर सभ्यतावश उसे हँसना चाहिए; इसलिए थोड़ा हँसा। इसके बाद दीपू को बातों-ही-बातों में अरूप का ध्यान ही नहीं रहा। दोनों लड़कियों से उसने पूछा, "तुम दोनों जमशेदपुर में कहां रहती हो?"

"साक्ची। और आप?"

"हम तो जमशेदपुर में नहीं रहते।"

"कलकत्ते में रहते हैं? आज रात की ही ट्रेन पकड़ेंगे?"

"कलकत्ते में रहते हैं, किंतु अभी कलकत्ता नहीं जायंगे। टाटानगर पहुंचकर तय करेंगे। हो सकता है, रक्सौल की तरफ चले जायं।"

"अभी कहां से आ रहे हैं? चाइबासा से?"

"हां, उधर हाटगामारिया नाम की एक जगह है। आज सुबह वहीं गये थे। वहां 'कारो' नदी है। उसीकी खोज हमें करनी थी।"

इरा में रहस्य और विस्मय की वृत्ति अधिक है। उसने बड़ी-बड़ी आंखों से दीपू की ओर देखते कहा, "नदी की खोज में गये थे! कहां?"

लोपामुद्रा इतनी जल्दी विचलित नहीं होती। वह जिस तरह की लड़की है, उस तरह की लड़कियां शादी के बाद पति के साथ बहुत हिल-मिलकर रहती हैं। अनजान घर में रहने के पहले ही सबकुछ जान जाती हैं। वे सहज ही किसी के चक्कर में नहीं पड़तीं। वह बोली, "नदी की

फिर खोज करेंगे ? इधर की सब नदियों को कोई-न-कोई पहचानता है 'कारो' नदी का नाम तो मैंने भी सुना है।"

दीपू को लोपामुद्रा पर क्षोभ नहीं हुआ। उसके शरीर के स्पर्श के पुलक को वह अनुभव कर रहा था। कुछ अन्यमनस्क-सा होकर बोला "हमने तो रास्ते के बारे में किसी से भी नहीं पूछा। कोई नक्शा नहीं था, गाइड नहीं था, खुद ही ढूंढ़ निकाला था। यह हम लोगों का ही आविष्कार है। हम दोनों दो घोड़ों पर चढ़कर…"

बीच में ही उसकी बात काटते हुए विस्मय से इरा अपनी बड़ी-बड़ी आंखों से उसकी ओर देखते हुए बोली, "घोड़ों पर चढ़कर गये थे ?"

"हां, हम 'गोयेलकेरा' से होते हुए घोड़ों पर 'बामियाबुरू' पहाड़ की तरफ गये थे। रास्ता जंगलों के बीच से था। जंगल इतने घने थे कि सूर्य की किरण भी वहां नहीं पहुंच पाती। हठात् 'कारो' नदी को देखा। ओफ, कितनी निर्जन, कितनी सुंदर, जगह थी वह ! लग रहा था, शाम को अप्सराएं वहां पर खेलने आती हैं। हम सारी रात उसी नदी के किनारे रहे। चांदनी में जल की झिलमिलाहट देखकर ऐसा लग रहा था, मानो…"

विश्वास न कर पाने के कारण लोपामुद्रा ने फिर उसे बीच में ही टोक दिया, "आप कैसे समझे कि यही 'कारो' नदी है ? नदी के किनारे नाम तो लिखा नहीं रहता है !"

"तुम ठीक कहती हो कि नदी के किनारे नाम नहीं लिखा रहता, किंतु किसी-किसी नदी को देखते ही पहचान लिया जाता है। इसके अलावा पास ही में एक बंगला भी था, जिसका नाम 'कारो विऊ' था। वहां के दृश्य देखने के लिए बहुत से साहब लोग आकर उस बंगले में ठहरते हैं।"

इरा बोली, "जंगल में कोई जानवर तो नहीं था ?"

"दूर से ही हमने हाथियों का झुंड देखा था। बाघ की आवाज भी सुनी थी। नदी के किनारे हिरन देखे। हमारे पास तो बंदूक भी थी।

हमारा यह मित्र अरूप बढ़िया शिकारी है।"

इस बातचीत में स्टेशन आ गया। उससे कुछ समय पहले ही सभी उतर गये। दीपू ने उठकर उनके बाहर निकल आने के लिए जगह कर दी। इरा से बोला, "तुम लोगों से मिलकर बहुत अच्छा लगा। फिर मुलाकात होगी।"

"लौटते समय फिर यहां आयेंगे? यदि आवें तो साञ्ची में मेरा मकान है।"

"यहां फिर आऊंगा या नहीं, कह नहीं सकता, किंतु जहां भी हो, फिर मुलाकात होगी।"

उनके चले जाने के बाद अरूप फिर बैठ गया और एक लंबी सांस ली। बोला, "उनसे इतनी झूठी-झूठी बातें करके तुम्हें क्या मिला?"

"झूठी बातें कहां कीं?"

"तुमने जो कहा, सब झूठ, सफेद झूठ था।"

"नहीं, भाई।" दीपू बोला, "वह सब झूठ नहीं था। मुझे वह सब कल्पना करते हुए अच्छा लग रहा था। ऐसी जगहों पर जाने की बड़ी इच्छा होती है। इसीलिए इस तरह से कहा था, मानो सचमुच गया था। इन लड़कियों से फिर तो मुलाकात होगी नहीं। हमारा परिचय तो अब इन्हें मिल भी नहीं सकेगा। ये सोचेंगी, अभी भी इस तरह के लोग हैं, जो घोड़े पर चढ़कर नदी की खोज में निकलते हैं! ये सब रोमांचकारी बातें सोचते हुए इन्हें निश्चय ही अच्छा लगेगा।"

"तुमने एक से कहा था कि फिर मुलाकात होगी। तुमने क्या इसी लड़की के साथ दोस्ती···"

"नहीं, यही एक झूठी बात कही। उसका चेहरा देखकर ही मैं समझ गया था कि और किसी दिन मुलाकात नहीं होगी।

३

यह तो अनुमान था ही कि आज सारी गाड़ियां देर से आयेंगी। दीपू को घर लौटने की जल्दी है न। स्टेशन पर भारी भीड़। कहीं पर कोई छोटी-मोटी दुर्घटना हो गई है। पांच घंटे से कोई गाड़ी नहीं आई टाटा-नगर। अरूप बहुत ही उद्विग्न है, वह यहां-वहां जाकर पूछताछ कर रहा है, मगर दीपू चुपचाप एक लोहे के खंभे से टिका खड़ा है।

अरूप से जितना बन सकता था, अपने मित्र के लिए किया, फिर भी उसके चेहरे पर गंभीरता छाई है। वह दीपू से ठीक से बातें नहीं कर पा रहा। वह अधिक देर तक उसके पास नहीं टिकता। कभी पानी का नल खोजने निकल जाता है तो वापस लौटते ही फिर सिगरेट खरीदने की याद आ जाती है। उसके बाद वह गाड़ी का पता करने के लिए दौड़ जाता है।

प्लेटफार्म पर सारे मुसाफिरों के चेहरों पर हैरानी है। गाड़ी का इंतजार करते-करते सभी तंग आ चुके हैं। कोई-कोई यह भी कह रहा है कि बागनान के पास ही पटरी के ऊपर लोग धरना देकर बैठ गये हैं, इसलिए सारी गाड़ियां वहां से आगे बढ़ नहीं पा रही हैं।

दीपू कान खड़े करके लोगों की बातें सुन रहा था। तभी भीड़ के पार प्लेटफार्म के बाहर दूर अंधकार की तरफ उसकी निगाह गई। सिगनल की लाल रोशनी के चारों ओर एक चमक-सी दिखाई पड़ी। क्या मेरे पिताजी की अबतक मृत्यु हो चुकी है? क्या मैं शहर लौटकर सचमुच पिताजी को देख नहीं सकूंगा? नहीं, ऐसा नहीं होगा। मरने के पहले उनको पता चलना ही चाहिए कि मेरे मन में अब कुछ नहीं है। मैंने सचमुच ही अपना गुस्सा निकाल दिया है। पिताजी के मरने के बाद उनकी अंत्येष्ठि कौन करेगा। भैया क्या आयंगे? मौसी का हर क्षण उद्विग्नता में बीत रहा होगा। यह सोचते-सोचते वह बोला, "क्यों, अरूप क्या यहां से कलकत्ता

के लिए कोई बस नहीं है? आजकल सिलीगुड़ी तथा दीघा तक के लिए तो बस चल रही है!"

"मैं नहीं जानता।" अरूप ने उत्तर दिया।

"जरा पता लगाओ न!"

अरूप ने कहा, "बस चलती तो इतने सारे लोग यहां बैठे रहते!"

"लगता है, इन लोगों ने टिकट ले लिये हैं। जरा बाहर जाकर एक बार मालूम तो करो।"

"तुम क्यों नहीं जाते?"

अब दीपू समझ पाया कि अरूप उससे गुस्सा हुआ बैठा है। मगर क्यों? दीपू ने सोचा और आखिर कारण ढूंढ़ निकाला। बस में दोनों लड़कियों के लिए जगह छोड़ देने के बाद उन दोनों ने एक से बैठने का आग्रह किया था। उस समय दीपू ने अरूप की ओर ध्यान दिये बिना स्वयं ही इस मौके का फायदा उठा लिया था। सचमुच इस बात से अंतर तो पड़ता ही है कि दीपू दोनों लड़कियों के साथ सटकर बैठा रहे, और अरूप सारे रास्ते हैंडिल पकड़कर खड़ा रहे। फिर टिकट भी तो अरूप ने ही लिया था। "किंतु तुम्हारी तो दो महीने के अंदर ही शादी हो रही है न!" दीपू ने सहसा कहा।

हठात् इस तरह की बात सुनकर अरूप चौंक पड़ा। बोला, "क्या मतलब? शादी करके कोई पाप कर रहा हूं क्या? इसीलिए बस की खोज में भी मुझे ही जाना पड़ेगा?"

"मत जाओ," दीपू ने कहा, "मगर तुम गुस्सा क्यों कर रहे हो? उन दोनों लड़कियों के पास नहीं बैठे, इसीलिए?"

"किसने कहा कि मैं गुस्से में हूं?"

"सचमुच तुम गुस्से में हो। महज मेरे ऊपर ही नहीं। दोनों लड़कियों ने बस से उतरते समय तुमको नमस्कार किया था। तुमने उनकी तरफ देखा तक नहीं।"

"नहीं, यह बात गलत है। तुम्हारी तरह जब-तब किसी लड़की को

देखकर मैं बेहयाई नहीं कर सकता।"

अरूप एकाएक चुप हो गया। ऐसी बातें सुनकर उसे वास्तव में गुस्सा आ गया।

दीपू हा-हा करके हँस पड़ा। हंसी सुनकर अरूप थोड़ा सकुचा गया। दीपू को यों हंसते देखकर उसकी छाती के भीतर हूक-सी उठी। जिसके पिता अभी मृत-शैया पर हैं या अबतक मर चुके हैं, वह इस तरह हंस कैसे लेता है ? क्या गंभीर रूप से कुछ न घटने पर कोई इस तरह का तार करता है ?

दीपू बोला, "अभी दो-एक लड़कियों का साथ क्यों नहीं कर लेते। सपना के साथ शादी हो जाने के बाद किसीकी तरफ देखने की भी मनाही रहेगी।"

अरूप ने गंभीर होकर कहा, "सपना इस तरह की गंवारू लड़की नहीं है। एक दिन सपना की सखी नूपुर पानी में भीगती हुई एलगिन रोड के मोड़ पर खड़ी थी। ट्राम-बस में बैठ नहीं पा रही थी। टैक्सी कोई खाली नहीं थी। मैं टैक्सी में उसी तरफ से गुजर रहा था। उसके घर पहुंचा दिया। सपना यह सुनकर बोली थी, 'अरे, नूपुर, नाम बड़ा सुंदर है।"

"अच्छा, नूपुर और घुंघरू दोनों का एक ही अर्थ होता है। तब आजकल नूपुर न पुकार करके लोग घुंघरू क्यों कहते हैं ?" दीपू ने पूछा।

बात चल पड़ी। "क्या पता। आगे सुनो," अरूप ने कहा, "नूपुर को देखकर सपना का भाई तो एकदम खो गया। एक दिन मुझसे बोला, नूपुर को देखकर पता नहीं चलता कि वह बंगालिन है, कश्मीरी लड़कियों की तरह उसकी बड़ी-बड़ी आंखों की पुतलियां हैं।"

दीपू बोला, "अरूप, एक बात पूछूं, तुमने सपना से शादी करने की बात पहली बार कब की ? उसके आगे क्या यह कहा था कि मैं तुम्हें प्यार करता हूं ?"

"धत् !"

"बोलो न, शरमाते क्यों हो ?"

"तुमने शांता से किसी दिन यह नहीं कहा ?"

"शांता से ? नहीं। एक और से एक दफे बोलते-बोलते भी नहीं कह सका। शब्द मुंह में आकर अटक गया। तुमने कैसे कहा था, बताओ। मैं भी तो जानूं !"

गुरु अपने शिष्य को मानो शिक्षा दे रहा हो, इस तरह से अरूप भारी गले से गुरु-गंभीर आवाज में बोला, "ऐसी बात मुंह से कहने की जरूरत नहीं पड़ती। मन के भीतर ही समझ लिया जाता है। अनेक लड़कियों के साथ अनेक लड़कों का परिचय होता है, किंतु उसके बीच एक को दूसरा चुंबक की तरह खींचता है। ऐसा क्यों होता है, यह कोई नहीं कह सकता। यही प्यार है।"

दीपू बोला, "यह तो समझा, किंतु शादी की बात तो मन में रखने से नहीं बनती। इसके लिए एक-न-एक दिन मुंह खोलना ही पड़ता है।"

अरूप को इस बार मौका मिल गया। दीपू को लक्ष्य करके ही वह ठठाकर हंस पड़ा। गर्व से भरकर बोला, "सच्चा प्यार रहने से उस क्षण की पहचान हो जाती है। तुमने जिसको यह बात कहने की सोची थी, उससे कह न पाने के कारण वह हाथ से निकल गई होगी।"

दीपू ने कहा, "मैं उससे शादी नहीं करना चाहता था। मैं केवल उससे इतना कहना चाहता था कि मैं तुम्हें प्यार करता हूं। किंतु यही बात कहने में बड़ी लज्जा आ रही थी। जाने दो, तुम सपना की बात बताओ।"

"तुम जिसकी बात कह रहे हो, उसको मैं पहचानता हूं। किसके साथ उसकी शादी हुई है, यह भी जानता हूं। तुमको इससे आघात लगा था। है न ?"

"बिल्कुल नहीं। वह शादी करना भी चाहती तब भी मैं नहीं करता। तुम्हारी तरह चौबीस साल की उम्र में शादी करने की इच्छा एकदम नहीं होती।"

"आजकल विदेशों में तो लड़के-लड़कियां सत्तरह-अठारह की उम्र में ही शादी कर लेते हैं।"

"तुम विदेश में ही जन्मते तो अच्छा था। उतनी दूर क्यों, बिहार, उत्तर प्रदेश में तो अभी भी आठ-दस साल की उम्र में शादी हो जाती है।"

"तुम्हें मेरी यह शादी अच्छी नहीं लग रही है क्या?"

"नहीं-नहीं, अच्छी क्यों नहीं लगेगी! अच्छा, यह तो बताओ कि जब तुमने सपना से शादी की बात की तब सपना के चेहरे पर कैसे भाव थे? पहली बार शरमाई थी न?"

अरूप ने बीते दिनों की याद करते हुए कहा, "तानसेन संगीत सभा में एक बार सपना के परिवार के सारे लोग गये थे। मैं भी वहां पर पहुंच गया था।"

दीपू समझ गया कि अरूप बात बना रहा है। जो घटना घटी थी, वह सच-सच बतायेगा नहीं! कोई भी नहीं बताता। फिर भी वह चुप रहा।

थोड़ा रुककर अरूप बोला, "मैं सपना के सीट के पीछेवाली पंक्ति में बैठा था। रात के चार बजे अली अकबर खां ने सरोद के ऊपर कोई धुन शुरू की। सपना के परिवार के सारे लोग सो रहे थे। सपना चाय पीने बाहर आ गई। मैं भी उठकर आ गया। सपना के साथ पहले ही मेरी मुलाकात हो चुकी थी। उस दिन उसने अपने भाई से परिचय कराया। सपना और मैं दोनों बाहर थे। महाजाति सदन के दूसरी तरफ एक छोटा-सा पार्क है। उसमें आते ही देखा कि बहुत से भिखारी वहां सो रहे हैं। हम लोग अपनी गाड़ी में आकर बैठ गये। कितना अच्छा लग रहा था। अभी ठीक से भोर नहीं हुई थी। रास्ते पर थोड़ा-थोड़ा प्रकाश बिखरा था। एक भी आदमी वहां नहीं था। ठंडी-ठंडी हवा चल रही थी। उधर सरोद पर एक राग हवा में तैर रहा था। सपना का एक हाथ थामकर मैं उसे प्यार से थपथपाने लगा।"

दीपू धीरे-से खांस उठा।

लजाकर अरूप बोला, "सचमुच मुझे उस समय बड़ा अच्छा लग रहा था। मगर भीतर-ही-भीतर थोड़ा कष्ट भी हो रहा था। मैंने सपना से

कहा, 'भीतरबैठकरसुनना मुझे जरा भी अच्छा नहीं लग रहा।' उसने पूछा, 'क्यों ?' मैंने कहा, 'तुम समझ नहीं सकतीं ?मैं अगर तुम्हारे पासबैठा होता तो'...सपना मजाक में हंसकर बोली, 'क्यों तुम्हारी दायीं ओर तो एक बहुत सुंदरी बैठी थी। उसने बढ़िया दुशाला ओढ़ रखा था।' मैंने कहा, 'दूसरी कोई लड़की मुझे पसंद नहीं है। मैं तो बस तुम्हारे लिए'...बीच में बात् काटकर सपना ने कहा, 'तुम मुझे सचमुच प्यार करते हो ?'

हंसी छिपाने के लिए दीपू ने एक सिगरेट जला ली, नहीं तो इतनी ज्यादा वह नहीं पीता। हंसी आने की वैसे कोई बात नहीं थी, मगर आ रही थी तो वह क्या करे। एक लड़की-लड़के के लिए यह जीवन-मरण का प्रश्न हो सकता है, मगर वही जब दूसरे के मुंह से सुनने को मिलता है तो हंसी आती ही है। उसने भी तो जिस दिन शुभ्रा का हाथ छुआ था उसका सारा शरीर थरथर कांपने लगा था !

तभी उसके विचारों को धक्का लगा, मेरे पिताजी क्या इस बीच चल बसे होंगे ? तो क्या मैं पिता को खो बैठा ? मेरा शरीर एकदम इतना हलका क्यों लग रहा है ?

जिस ओर कलकत्ता है, दीपू उसी तरफ अन्धकार में आंखें फाड़कर देखने लगा। कलकत्तेतक निगाह नहीं जाती। दीपू इस समय मन के भीतर भी कलकत्ता का कोई दृश्य नहीं देख पा रहा।

अरूप बोलता रहा, "जब हम अंदर लौटे, सपना के घर के लोग सो रहे थे। अली अकबर खां के साथ करीमतुल्ला की जवाबी संगत चल रही थी। तब भी उनकी नींद नहीं टूटी।"

दीपू ने कहा, "लगता है, घोड़े बेचकर सो रहे होंगे, या फिर तुम दोनों को वापस आते देखकर आंखें बंद कर ली होंगी।"

"मतलब ?"

"तुम दोनों को मौका दे रहे होंगे। देखो अरूप, मुझे तुमसे ईर्ष्या हो रही है।"

अरूप गर्व से भरकर बोला, "ईर्ष्या ? क्यों, सपना के लिए ?"

"नहीं-नहीं, सपना को अच्छी तरह पहचानता नहीं। ईर्ष्या इस बात से कि तुम्हारे पिता-मां दोनों अभी जिंदा हैं। वे तुमको कितना चाहते हैं। तुमने एक लड़की से प्रेम करने के बाद उससे शादी करनी चाही, इसपर तुम्हारे माता-पिता और उस लड़की के माता-पिता दोनों खुशी-खुशी राजी हो गये। तुम्हें किसी प्रकार की कमी नहीं है। जब जो चाहते हो, घर से मिल जाता है। बी० कॉम० परीक्षा के समय तुम्हारे लिए दो-दो प्रोफेसर रखे गये थे। मुझे देखो, इसका उल्टा है। तब भी मैं तुमसे ईर्ष्या नहीं करता। क्यों नहीं करता, जानते हो ? मैं जानता हूं, हमेशा यही तो नहीं रहेगा कि गरीब कष्ट भोगें और धनी केवल आनंद करते रहें। देखना, तुम लोगों को इतने सारे पैसों से हाथ धोना पड़ेगा।"

"पड़ेगा तो पड़ेगा। मुझे रुपयों-पैसों से इतना मोह नहीं है। किंतु ये सारी बातें तुम्हारी जबान से अच्छी नहीं लगतीं। तुमने खुद ही एक दिन रुपये चुराये थे।"

"मैंने चुराने के लिए रुपये नहीं चुराये। मैं तो देखना चाहता था कि रुपये चोरी करने पर कैसा अनुभव होता है।"

"अच्छा, तुमने मेरी टार्च का क्या किया ? वह भी देखना चाहते थे कि दूसरे की टॉर्च खो देने पर कैसा लगता है ?"

"लगता है, टार्च खो जाने का दुःख तुमको अबतक है।"

"वह टार्च पिताजी मेरे लिए नेपाल से लाये थे।"

"तुम्हारा क्या है ! मुंह से कहते ही पिताजी इस तरह की सौ टार्चें अभी दुबारा ला कर दे सकते हैं।"

"इसका मतलब यह नहीं कि तुम मेरी टार्च खो दो।" अरूप ने कुछ तेज होकर कहा, "देखो मैं कहे देता हूं कि तुम मेरे पिताजी के बारे में इस तरह का ताना देकर आइंदा बोलोगे तो खैर नहीं।"

"मैंने ताना कब दिया ?"

"आज दोपहर से देख रहा हूं कि तुम सीधे ढंग से बात नहीं कर रहे हो। तुम्हारे पिता ने सारी जायदाद खो दी। तभी हालत ऐसी खराब हो

गई है । उसीसे तुम्हारे मन में गुस्सा है। मेरे पिताजी पसीना बहाकर धनी-मानी बने हैं।"

दीपू ने धीमे स्वर में कहा, "सच अरूप, अपने पिताजी पर मुझे किसी प्रकार का गुस्सा नहीं है । धन-दौलत को मैं महत्त्व नहीं देता।"

इसके बाद दोनों के बीच बातें बंद हो गईं। दोनों अपने सामान के सहारे आड़े-तिरछे होकर चुपचाप बैठे रहे। अरूप का गोरा चेहरा उत्तेजना से कुछ लाल हो उठा था। दीपू अंधकार में उस ओर देख रहा था, जिस ओर कलकत्ता था।

अरूप ने संकल्प किया कि अब वह किसी भी दिन इस तरह की मित्र-मंडली के साथ बाहर घूमने नहीं निकलेगा। शादी के बाद सपना के साथ डलहौजी जायगा । चाइबासा बहुत ही बुरी जगह है । चारों तरफ गंदगी-ही-गंदगी । दीपू बड़ी-बड़ी बातें करता है। अमुक जगह जायंगे, मगर पहचान उसकी किसी जगह की भी नहीं है। इससे बढ़िया तो उस बार पुरी में लगा था।

•

रात के कोई तीन बजे रेल घड़घड़ाती हुई आई। अरूप और दीपू दोनों ही तंद्रा में डूबे हुए थे। हड़बड़ाकर उठे। दोनों एक ही डिब्बे में चढ़े, किंतु अलग-अलग खड़े रहे। बैठने की जगह पाने का कोई सवाल ही नहीं था। धक्का-मुक्की में दोनों अलग हो गये।

गुसलखाने के पास सामान का सहारा लेकर अरूप खड़ा हो गया। दीपू भीतर की तरफ चला गया और दो सिंगल सीटों के बीच जैसे-तैसे खड़ा हो गया। अरूप कभी तीसरे दर्जे में सफर नहीं करता । इसीलिए उसको कष्ट हो रहा था ।

जालूडी के आते ही अप्रत्याशित रूप से दीपू को बैठने के लिए एक सीट मिल गई । उसके ऊपर एकदम सूटकेश रखकर कब्जा कर लेने के बाद वह चिल्लाकर बोला, "ओ अरूप, यहां जगह है। आ जाओ।"

पर अरूप ने कोई जबाव नहीं दिया।

"नहीं-नहीं, सपना को अच्छी तरह पहचानता नहीं। ईर्ष्या इस वात से कि तुम्हारे पिता-मां दोनों अभी जिंदा हैं। वे तुमको कितना चाहते हैं। तुमने एक लड़की से प्रेम करने के वाद उससे शादी करनी चाही, इसपर तुम्हारे माता-पिता और उस लड़की के माता-पिता दोनों खुशी-खुशी राजी हो गये। तुम्हें किसी प्रकार की कमी नहीं है। जव जो चाहते हो, घर से मिल जाता है। वी० कॉम० परीक्षा के समय तुम्हारे लिए दो-दो प्रोफेसर रखे गये थे। मुझे देखो, इसका उल्टा है। तव भी मैं तुमसे ईर्ष्या नहीं करता। क्यों नहीं करता, जानते हो ? मैं जानता हूं, हमेशा यही तो नहीं रहेगा कि गरीव कष्ट भोगें और धनी केवल आनंद करते रहें। देखना, तुम लोगों को इतने सारे पैसों से हाथ धोना पड़ेगा।"

"पड़ेगा तो पड़ेगा। मुझे रुपयों-पैसों से इतना मोह नहीं है। किंतु ये सारी वातें तुम्हारी जवान से अच्छी नहीं लगतीं। तुमने खुद ही एक दिन रुपये चुराये थे।"

"मैंने चुराने के लिए रुपये नहीं चुराये। मैं तो देखना चाहता था कि रुपये चोरी करने पर कैसा अनुभव होता है।"

"अच्छा, तुमने मेरी टार्च का क्या किया ? वह भी देखना चाहते थे कि दूसरे की टॉर्च खो देने पर कैसा लगता है ?"

"लगता है, टार्च खो जाने का दुःख तुमको अवतक है।"

"वह टार्च पिताजी मेरे लिए नेपाल से लाये थे।"

"तुम्हारा क्या है ! मुंह से कहते ही पिताजी इस तरह की सौ टार्च अभी दुवारा ला कर दे सकते हैं।"

"इसका मतलव यह नहीं कि तुम मेरी टार्च खो दो।" अरूप ने कुछ तेज होकर कहा, "देखो मैं कहे देता हूं कि तुम मेरे पिताजी के वारे में इस तरह का ताना देकर आइंदा वोलोगे तो खैर नहीं।"

"मैंने ताना कव दिया ?"

"आज दोपहर से देख रहा हूं कि तुम सीधे ढंग से वात नहीं कर रहे हो। तुम्हारे पिता ने सारी जायदाद खो दी। तभी हालत ऐसी खराव है

गई है । उसीसे तुम्हारे मन में गुस्सा है। मेरे पिताजी पसीना बहाकर धनी-मानी बने हैं ।"

दीपू ने धीमे स्वर में कहा, "सच अरूप, अपने पिताजी पर मुझे किसी प्रकार का गुस्सा नहीं है । धन-दौलत को मैं महत्व नहीं देता ।"

इसके बाद दोनों के बीच बातें बंद हो गईं। दोनों अपने सामान के सहारे आड़े-तिरछे होकर चुपचाप बैठे रहे। अरूप का गोरा चेहरा उत्तेजना से कुछ लाल हो उठा था। दीपू अंधकार में उस ओर देख रहा था, जिस ओर कलकत्ता था।

अरूप ने संकल्प किया कि अब वह किसी भी दिन इस तरह की मित्र-मंडली के साथ बाहर घूमने नहीं निकलेगा। शादी के बाद सपना के साथ डलहौजी जायगा । चाइबासा बहुत ही बुरी जगह है। चारों तरफ गंदगी-ही-गंदगी। दीपू बड़ी-बड़ी बातें करता है। अमुक जगह जायंगे, मगर पहचान उसको किसी जगह की भी नहीं है। इससे बढ़िया तो उस बार पुरी में लगा था।

•

रात के कोई तीन बजे रेल घड़घड़ाती हुई आई। अरूप और दीपू दोनों ही तंद्रा में डूबे हुए थे। हड़बड़ाकर उठे। दोनों एक ही डिब्बे में चढ़े, किंतु अलग-अलग खड़े रहे। बैठने की जगह पाने का कोई सवाल ही नहीं था। धक्का-मुक्की में दोनों अलग हो गये।

गुसलखाने के पास सामान का सहारा लेकर अरूप खड़ा हो गया। दीपू भीतर की तरफ चला गया और दो सिंगल सीटों के बीच जैसे-तैसे खड़ा हो गया। अरूप कभी तीसरे दर्जे में सफर नहीं करता । इसीलिए उसको कष्ट हो रहा था ।

जालूडी के आते ही अप्रत्याशित रूप से दीपू को बैठने के लिए एक सीट मिल गई । उसके ऊपर एकदम सूटकेश रखकर कब्जा कर लेने के बाद वह चिल्लाकर बोला, "ओ अरूप, यहां जगह है। आ जाओ।"

पर अरूप ने कोई जबाव नहीं दिया।

४

हावड़ा स्टेशन पर साढ़े नौ बजे गाड़ी पहुंची। यही दफ्तर का समय है। चारों तरफ भाग-दौड़, मानो कोई दुर्घटना हो गई हो। एक-एक करके लोकल गाड़ियां आकर रुकती हैं और थैले से जैसे आलू बिखर जायं, उसी तरह से लोग इधर-उधर भाग-दौड़ करने लगते हैं। जिधर देखो, आदमी-ही-आदमी! दूर से आनेवाली रेल से जो लोग उतर रहे हैं, उनके लिए यह समय बड़ी कठिनाई पैदा करता है। लोकल गाड़ियों से उतरनेवाले दफ्तर के बाबू लोग तेजी से भाग रहे हैं—बदहोशी की हालत में, यहां तक कि औरतें भी बीच-बीच में दौड़ पड़ती हैं।

अरूप दीपू से कुछ खिचा है, लेकिन साथ चल रहा है। कहीं वह भीड़ में खो न जाय, क्योंकि टिकट उसीके पास है।

इस समय टैक्सी मिलने का तो कोई सवाल ही नहीं है। टैक्सी के लिए लंबी कतारें लगी हैं। खड़ी हुई बसों में, तीन-चार बसों तक में, तो कोई गुंजाइश ही नहीं। ठसाठस भीड़ है। कई बसें तो चलने को तैयार है। कुछ चल पड़ी हैं। लौटकर आई हुई बसों की लंबी कतार है। दाएं-बाएं बसों की दौड़। टन-टन करती रिक्शाएं, हैरान आदमी, फेरीवाले कुली! दौड़ती टैक्सियां। बीच में अंकिचन ट्रैफिक पुलिस!

दीपू बुरी तरह से उद्विग्न हो रहा था। अब उसे पिताजी के अलावा कुछ भी नहीं सूझ रहा है। पिताजी, बड़ी दीदी, भैया—घर पहुंचकर क्या देखेगा वह?

स्टेशन से निकलते ही दीपू असहाय होकर इधर-उधर ताकने लगा। अरूप भी उतावला हो रहा है। लेकिन तुरंत पहुंच जाना कैसे संभव हो सकता है! गंभीर होकर वह दीपू से कहता है, "बस में तो चढ़ना ही पड़ेगा। दूसरा कोई उपाय नहीं है।"

पर पांचवीं बस में बैठकर इतनी देर कौन प्रतीक्षा करेगा! जिन

टैक्सियों को मुसाफिर बुक करके ला रहे हैं, उनमें से एक को रोकने के लिए दौड़ते हुए अरूप को पुलिस से कठोर बातें सुननी पड़ीं। केवल एक मुसाफिर को लेकर जाती हुई टैक्सी के सामने मानों दीपू कूद ही पड़ा। उसको रुकवाकर बोला, "आप उत्तर की तरफ जा रहे हैं ? सुनिए, मेरा जाना बहुत जरूरी है। मुझे आम्हर्स्ट स्ट्रीट के आस-पास छोड़ देंगे ?"

कलाई पर बंधी घड़ी को विचित्र ढंग से देखते हुए वह आदमी बोला, "नहीं, मुझे अफसोस है कि मैं दक्खिन में जाऊंगा।"

धूप का चश्मा पहने हुए उस आदमी की आंखें दीपू पढ़ नहीं पाया। तब भी उसे सन्देह न रहा कि उसने झूठ बोला। दीपू ने फिर अनुनय की, "दया कीजिए···मेरे घर में बड़ी विपत्ति···"

उस आदमी ने कहा, "मुझे बहुत देर हो रही है। आप लाइन में जा खड़े होइए।"

दीपू ने गाड़ी को जाने दिया। वह सोच रहा था, आदमी आदमी का दुश्मन होता है।

काफी समय निकल गया तो अरूप बोला, "यहां तो गाड़ी मिलना असंभव है। हावड़ा पुल के उस पार शायद मिल जाय।"

दीपू सूटकेस उठाकर दौड़ पड़ा। हावड़ा पुल की भीड़ को ठेलते हुए वे दोनों आगे बढ़ते जा रहे थे। बीच तक पहुंचते-पहुंचते दीपू हांफने लगा, लेकिन उसे मानो होश नहीं था। पुल के समाप्त होने पर भी वह दौड़ रहा था, जैसे इसी रफ्तार से दौड़तेहुए वह आम्हर्स्ट स्ट्रीट पहुंच जायगा।

संयोग से बड़ा बाजार के मोड़ पर ही एक टैक्सी मिल गई। तीन स्थूलकाय सुन्दरियों के उतरने के पहले ही दोनों ने दोनों तरफ से दरवाजा पकड़ लिया। चढ़ते ही दीपू बोला, "जल्दी चलो, आम्हर्स्ट स्ट्रीट।"

टैक्सी वाले ने घूमकर उन दोनों को देखा। कहीं वे भागे हुए आसामी तो नहीं हैं !

अरूप पुद्दुपुकुर में रहता है। पिछली रात को दीपू से झगड़ा होने के कारण उसका मुंह अब भी चढ़ा हुआ है। फिर भी इ[illegible]

याद रखने का कोई मतलब नहीं है। इसीलिए सहज रूप से बोला, "दीपू, मैं भी तुम्हारे साथ ही उतरूंगा। तुम्हारे साथ ही रहूंगा।"

"नहीं-नहीं, इसकी जरूरत नहीं है। तुम घर जाओ !"

"अभी मेरे घर न जाने से भी चलेगा। मैं कुछ देर रुककर चला जाऊंगा।"

"कोई जरूरत नहीं।"

"तुम्हें कुछ रुपयों की जरूरत पड़ेगी? मेरे पास इस समय कोई दो सौ रुपये हैं।"

"होंगे। मुझे जरूरत नहीं है।"

"ऐसे ही पास में रखो। यदि अचानक जरूरत पड़ गई तो?"

"नहीं, रुपये लेने के बाद मैं लौटा नहीं पाऊंगा।"

थोड़ी देर में घर की गली आ गई। मोड़ से ही दीदी दिखाई पड़ गईं। दीपू चिल्लाया, "दीदी !"

कॉफी का डिब्बा थामे मंझली दीदी अपर्णा छाता लगाये एक महिला से बातें कर रही थी। दीपू की ओर देखकर बोली, "अच्छा तुम आ गये! किस गाड़ी से आये?"

दीपू टैक्सी का दरवाजा खोलकर उतर पड़ा। दीदी की बात का जवाब दे कि उन्होंने फिर पूछा, "क्यों, तार मिल गया था न?"

"हां, पिताजी कैसे हैं?"

दीदी ने कहा, "वह कह रहे थे कि तार पाते ही क्या तुम आओगे? मैं ठीक ही कह रही थी कि जरूर आओगे।"

"पिताजी..."

अपर्णा ने उस महिला की ओर मुड़कर कहा, "अच्छा, अनुभा दी, मैं खुद ही आपसे मिल लूंगी।" उसके बाद दीपू को संबोधन करके बोली, "अच्छे हैं। तुम्हारा सूटकेस कहां है?" अपर्णा के होठों पर हल्की मुस्कान थिरक उठी।

अरूप टैक्सीवाले को टैक्सी घुमा लेने के लिए कहकर मुंह बाहर

निकालकर बोला, "अच्छा, मैं जा रहा हूं, दीपू।" और वह सोचने लगा, दीपू की दीदी कैसी हैं ? पिताजी की तबीयत के बारे में खास ध्यान नहीं दे रही हैं। उसके घरवाले कितने अजीब हैं ! इस तरह का तार पाकर भी दीपू नहीं आयेगा, ऐसा दीपू के पिताजी सोच रहे थे !

अरूप को अपने घर के सामने उतरते ही बड़ी निश्चितता का अनुभव हुआ। कहीं भी घूमने जाओ, आराम अपने घर लौटने पर ही मिलता है। एक नौकर घर की सफाई कर रहा था। अरूप ने प्यार से कहा, "ओ सीतू, यह सूटकेस उठा !"

बाहरवाले कमरे में अरूप के पिताजी कुछ लोगों के साथ बातें कर रहे थे। कुछ साल पहले अरूप बाहर कहीं जाता था, तब जाते समय या लौट कर आने पर पिताजी और मां को प्रणाम करता था। अब उसे ऐसा करने में लज्जा आती है। तब भी लौटकर वह सबसे पहले पिताजी के पास जाता है। आज भी घर के अंदर जाने के बदले बैठक में आ गया। रत्नेश्वर घोषाल ने लड़के को देखकर दूसरों से बातें करना बंद कर दिया, पूछा, "क्या बात है, बड़ी जल्दी लौट आये? तुम तो कह गये थे कि दो हफ्ते बाहर रहोगे ?"

"मेरे मित्र को, जिसके साथ मैं गया था, अचानक उसके पिता की तबीयत की खराबी का तार मिला और हम लोग चले आये।"

पिता ने कहा, "यह तुमने ठीक ही किया। मेरी तबीयत भी कुछ दिनों से अच्छी नहीं रहती।"

"क्यों, क्या बात है ?"

"खास कुछ नहीं है। कमर में वही दर्द। दो दिन से बाहर भी नहीं गया। अच्छा, जाओ। भीतर मुंह-हाथ धोकर आराम करो। किस गाड़ी से आये ?"

अरूप ने बता दिया।

पिताजी और उनके कर्मचारियों ही ने नहीं, उनके मित्रों तथा स्थानीय परिचितों ने भी अरूप से बड़े आदर के साथ बातें कीं। उन लोगों में एक वही प्रोफेसर दासगुप्ता भी थे, जिसके बारे में दीपू ने कहा था। प्रोफेसर

...प्ता ने पूछा, "वहां की आवोहवा कैसी है? गर्मी थी या कुछ ठंड थी?...
...हफ्ते मुझे भी जमशेदपुर जाना पड़ेगा।"

अरूप ने उत्तर दिया, "उतनी गर्मी नहीं थी। मैं जिस मित्र के साथ ...ा था, उसको आप भी पहचानते हैं। उसका पुकारने का नाम है दीपू। ...रा नाम है दीपांजन सरकार।"

"दीपांजन सरकार? कौन?"

"वह आम्हर्स्ट स्ट्रीट में रहता है। आपकी फर्म में उसने कुछ दिन काम भी किया था। कहीं आपके साथ ही स्कूल में आडिट करने गया था। कल रात ही आपके वारे में वता रहा था।"

प्रोफेसर के चेहरे पर अव भी परिवर्तन के कोई चिह्न नहीं दिखाई दिये। वोले, "ओ हो, राममोहनवावू का लड़का? राममोहनवावू वीमार ... हैं?"

"हां।"

"उनकी उम्र भी कम थोड़ी है! लेकिन अभी हट्ठे-कट्ठे हैं। किसी जमाने में वह फुटवाल के अच्छे खिलाड़ी थे।"

अरूप की इच्छा हुई कि दीपू ने रुपये चुराने की जो वात कही... उसे ठीक तरह से प्रोफेसर के मुंह से सुन ले। दीपू ने जरूर वहुत... छिपाया है।

प्रोफेसर ने खुद ही पूछा, "दीपू से तुम्हारी कितने दिन की ... है?"

"कोई चार-पांच साल से।"

"लड़का वहुत अच्छा है, पर वड़ी जल्दवाजी कर वैठता है। ... वात में मन से नहीं डूवता। मेरे पास कुछ दिन तक काम कि... अचानक काम छोड़ दिया। लगा रहता तो वहुत आगे बढ़ जात... तुम लोगों का घूमना अधूरा ही रह गया!"

अरूप कुछ क्षण के लिए अवाक् रह गया। दीपू ने तो ... की थी। रुपये की चोरी की वातको तो प्रोफेसर दासगुप्ता ...

दिया, उलटे उन्होंने दीपू की प्रशंसा ही की। तब क्या दीपू ने झूठ कहा था, या यह झूठ कह रहे हैं? अरूप ने सोचा, बाद में किसी समय पिताजी से प्रोफेसर दासगुप्ता के बारे में बातें करूंगा। जो घूस भी ले सकता है, उसके ऊपर अपनी कंपनी के ऑडिट की जिम्मेदारी छोड़ना क्या ठीक रहेगा?

अरूप के घर की सीढ़ियां सादे रंग की हैं। पूरे घर में उसी रंग की पॉलिश की हुई है। अरूप दूसरे तल्ले पर आया। मां ने हंसकर कहा, "लौट आये? तेरी आंखें बुझी हुई हैं। रात में सोया नहीं क्या?"

अरूप बोला, "रात की ट्रेन में सोना अच्छा नहीं लगता मुझे।"

बोलते हुए अरूप ने सोचा—अगर मां को यह पता चल जाता कि पूरी रात वह भीड़ में खड़े-खड़े आया है, तब तो उनकी हालत ही बिगड़ जाती। मां तो यह सोच भी नहीं सकतीं।

"जाओ, जल्दी से नहा-धोकर खाना खा लो। उसके बाद थोड़ा [illegible] लो। आज और कहीं बाहर मत निकलना। समझे!"

"मां, तुम खाना परोसो। मैं नहा-धोकर आ रहा हूं।"

अपने कमरे में जाकर अरूप ने कपड़े बदले, लेकिन [illegible] उसकी मेज पर कोई चिट्ठी पड़ी थी। उसे बिना पढ़े [illegible] नीचे उतर आया। दूसरे तल्ले के फोन को उठाकर [illegible] नीचेवाले फोन पर किसी पर बिगड़ रहे हैं। कह रहे हैं, [illegible] तो सबके होता है, लेकिन मैं उम्मीद कर रहा था कि [illegible] बहुत बुद्धि भी होगी।

"नहीं सर, मैंने तो सोचा था कि बजाय [illegible]..."

"तुमको सोचने के लिए किसने कहा था? [illegible] वैसा करना था?"

अरूप ने फोन रख दिया। थोड़ी [illegible] लिया। पिताजी अब भी बातें कर रहे थे, "[illegible] और लिखने-पढ़ने का इंतजाम मैं करूंगा। [illegible]

"नहीं सर, इस बार दया करके [illegible]..."

ाती करने पर ही दया की जरूरत पड़ जाती है ! दया करता चलूं
। वड़ा धंधा हर्गिज नहीं चल सकेगा।"
ताजी वहुत गुस्से में हैं। अरूप ने सोचा, अभी वह जल्दी फोन नहीं
। फिर भी वह टेलीफोन के आस-पास चक्कर लगाता रहा। सपना
क वार फोन करना था।

५

दरवाजे से होकर सीढ़ी के पास सूटकेस पटक कर दीपू गुस्से में फट
पड़ा, "इसके क्या माने ? मुझे झूठा तार भेजकर वुलाने का क्या मतलब
है ?"

मंझली दीदी वोली, "झूठ नहीं है। सचमुच ही पिताजी वीमार पड़े
थे।"

"ऐसा कुछ नहीं हुआ था कि मुझे वापस वुला लिया जाय।"

"मैं अकेली हूं। परसों ही मौसाजी आये।"

"मैं आकर ही क्या कर लेता ? मौसाजी तो आ ही गये थे।"

सीढ़ी के ठीक पास ही दीपू के पिता राममोहन खड़े थे। चाइव
जाने के पहले जिस तरह पिताजी को देखकर गया था ठीक उसी तर
वह थे। तवीयत खराव होने का कोई निशान नहीं दिखाई दे रहा
लंबे-चौड़े कद के थे।

पिताजी भारी गले से बोले, "अगर यहां आकर मुझे वुरी ह
देखते तो क्या तुम्हें खुशी होती ?"

"यह बात नहीं है। लेकिन मैं चाइवासा एक जरूरी का
हुआ था।"

"जरूरी क्या काम था ? मैं भी तो सुनूं।"

"वह मेरा निजी काम था। लेकिन इस तरह से झूठा तार भेजकर नाहक मुझे..."

बीच में ही बात काटकर पिताजी ने कहा, "तुम चाइबासा गये थे, या और कहीं ? जाने के पहले मुझे बताया था क्या ?"

"दीदी को तो कहकर गया था।"

पिताजी हठात् जोर से चिल्ला पड़े, "इस घर का मालिक कौन है ? दीदी ? मैं क्या मर गया था ? यह सब यहां नहीं चलेगा ! चाहो तो तुम भी अपने भाई की तरह, जहां खुशी हो, जा सकते हो। मैं जितने दिन जिंदा हूं, अपना काम चला लूंगा।"

दीपू कुछ बोलने जा रहा था कि मंझली दीदी जल्दी से उसका हाथ पकड़कर घसीट ले गई। बोली, "पिताजी, जाने के पहले आपको खोजा था, यही पूछने के लिए। आप उस दिन भवानीपुर गये थे।"...

"अगले दिन भी तो बता सकता था। या बिस्तर बांधकर अपनी बात कहेगा ? इस तरह कहने का क्या मतलब ? मेरी रजामंदी लेने की भी जरूरत नहीं ? मैंने उसको कहीं भी जाने के लिए मना किया था ?"

उत्तेजना के कारण दीपू का चेहरा दमक उठा। वह जानता था, उसके एक बात कहते ही पिताजी का सारा गुस्सा दब जायगा। हो सकता है, पिताजी भी इस बात को जानते हों। फिर भी प्राणपण से अपने व्यक्तित्व की रक्षा में गुस्सा किये जा रहे हैं। दीपू अपने को थोड़ा संभाल लेने के बाद बोला, "मेरा जाना अकस्मात् तय हुआ था।"

"पिछले महीने जो आसाम या और कहीं गये थे तो क्या पूछकर गये थे ?"

मंझली दीदी बोली, "पिताजी, दीपू अब नहा-धोकर तैयार हो ले। इसको दो बजे जाना है।"

दीपू ने चौंककर पूछा, "कहां ?"

"तुमको एक नौकरी के लिए इंटरव्यू में जाना है।"

"इंटरव्यू ?" दीपू ने विस्मित स्वर में कहा, "मैंने तो कहीं दरख्वास्त
हीं दी है।"

"सेकेन्डरी बोर्ड के सुहासबाबू पिताजी से कह गये हैं। आज वहां पर
ई इंटरव्यू हैं। छः लोगों को लिया जायगा। तुमको दरख्वास्त अपने साथ
ी ले जानी है।"

दीपू ने व्यंग्य में कहा, "इसका मतलब है कि बीमारी का तो महज
बहाना था।"

मंझली दीदी बीच में टोककर बोल पड़ी, "नहीं-नहीं, सुनो तो—"

पिताजी का चेहरा जर्द हो गया। कड़वी जबान से बोले, "देख पुनि,
मैं बीमारी में मर जाऊं तो इससे मेरे लड़के को खुशी होगी।"

दीदी कहना चाहती थी कि परसों पिताजी गुसलखाने में…लेकिन
दीपू सुनना ही नहीं चाहता। बोला, "मैं इंटरव्यू में नहीं जाऊंगा।"

पिताजी की आवाज फिर तेज हो गई, "जाओगे क्यों नहीं ? नहीं
जाओगे ? मैंने सुहास से कहा है"…

"क्यों ? मैं इस तरह गलत ढंग से नौकरी नहीं लूंगा। बहुत-से लोगों
ने दरख्वास्तें दी हैं और मैं अंदर-ही-अंदर जान-पहचान के जरिये…"

पिताजी ने आवेश में कहा, "जिस देश में सबको नौकरी नहीं मिल
वहां इस तरह से ही नौकरी ढूंढ़नी पड़ती है। तुम मुझको न्याय-अन्
सिखा रहे हो ?"

दीपू ने कठोर आवाज में कहा, "जी हां।"

"क्या कहा ?" पिताजी का पारा एकदम आसमान पर चढ़ गय

दोनों आमने-सामने थे। एक-दूसरे को ताक रहे थे। पिताजी
कांप रहे थे। लगता था, जैसे सीढ़ी से दीपू के ऊपर कूद पड़ेंगे।
भी दीपू ने अपनी नजर नहीं हटने दी। घूरकर देखते हुए धीरे

"मेरी निगाह में यह एक गुनाह है।"

दीदी यद्यपि जानती है कि उसकी धमकी से काम नहीं च
भी बोली, "देखो दीपू, तुम हद से बाहर जा रहे हो ! तुमने

रखा है ?"

पिताजी ने चीखकर कहा, "निकल जाओ घर से। अभी, फौरन।"

दीपू विचलित नहीं हुआ, बोला, "तब मुझे चाइबासा से बुला क्यों लिया ?"

"जहां से आये हो, वहीं चले जाओ। दुबारा मुंह दिखाने कभी मत आना। बड़ा भाई जिस रास्ते गया है, उसी रास्ते तुम भी जाओ। जाओ, अपना रास्ता देख लो।"

दीपू ने दृढ़ता से कहा, "नहीं, मैं नहीं जाऊंगा। मैं भैया की तरह थोड़े ही बन सकूंगा।"

"नहीं जाओगे! मतलब ? नालायक बेटों के रहने से, न रहना बेहतर है। कोई काम-धाम नहीं, फिर भी दिमाग ऊंचा रखते हो !"

दीपू का मन हुआ कि बात आगे न बढ़ाकर सीधे अपने कमरे में जाकर सो रहे। रात को परेशानी कम नहीं हुई। लेकिन ऊपर नहीं जा सका। पिताजी सीढ़ी के ऊपर ही खड़े थे। जीने पर चढ़ने के लिए उनके पास से ही होकर गुजरना पड़ेगा।

दीपू ने इस बार धीमे स्वर में कहा, "नहीं, मैं घर छोड़कर कहीं नहीं जाऊंगा।"

पिताजी गुस्से में रहे, मगर दीपू ने आगे एक भी बात नहीं की। सीढ़ी के ऊपर एक पैर रखकर वहीं खड़ा रहा। आखिर, पिताजी ने अपनी पुरानी बात दोहरायी। दीदी को लक्ष्य करके कहा, "पुनि, अपने मौसा को खबर भेज दो कि मकान बेच दें। मैं कलकत्ते का झमेला ही उठा दूंगा। आज ही खबर भेजो।"...

इतना कहकर पिताजी चप्पल फट-फट करते हुए ऊपर चले गये।

दीपू ने अपने कमरे में आकर जूते खोले, लेकिन ट्रेनवाली पैंट और कमीज पहनेहुए ही बिस्तरे पर पड़ रहा। मारे भूख केउसका बुरा हाल हो रहा था। कल रात से खाना नहीं खाया था। अरूप के साथ झगड़े के बाद खाने की बात दोनों मेंसे किसी नेभी नहीं उठाई थी। कड़ाके कीभूख लगने

पर मन और भी विषण्ण हो उठता है। लेकिन उसका मन हो रहा है कि किसी से बातें करते हुए अपनी पीड़ा को भूल जाय। लेकिन ऐसा कोई भी तो नहीं है, जिसके पास दौड़कर जा पहुंचे। भाभी के पास जाने पर कुछ खाने को तो मिल ही जाता, लेकिन अभी इतनी दूर पाइकपाड़ा तक जाने की इच्छा नहीं थी। कुछ दिन पहले भैया इसी कमरे में रहते थे। खिड़की के पास मां की तस्वीर टंगी थी। उस तस्वीर को भैया ले गये। भैया के जाने पर दीपू खूब रोया था। उसको लगा था, इतनी वड़ी दुनिया में पता नहीं, भैया कहां खो जायंगे। उस समय भैया की शादी के बारे में दीपू को पता नहीं था। किंतु भैया में धैर्य की सीमा नहीं थी। पिताजी ने कितनी बुरी तरह से भाभी का नाम लेकर गालियां दी थीं। भैया ने एक का भी जवाब नहीं दिया था। बस इतना कहा था, मैं घर छोड़कर जा रहा हूं।

सोचते-सोचते दीपू को नींद आ गई। उसका छरहरा बदन बिस्तर पर कोने की तरफ था। एक हाथ के ऊपर उसका मुंह थोड़ा तिरछे होकर था। सारी रात ट्रेन की खिड़की से आनेवाली हवा लगने के कारण उसके सिर के बालों ने जटाओं का रूप ले लिया था। पैंट की जेब से कुछ खरीज बिस्तरे पर निकल पड़ी थी। नाक के नीचे थोड़ा-थोड़ा पसीना चमक रहा था। सोने पर इसी तरह से उसको पसीना आता है। चेहरे का तेवर कुछ कातर भाव लिये हुए था। कौन जाने, सोते हुए वह कोई सपना देख रहा हो।

साढ़े बारह बजे के लगभग अपर्णा उसके कमरे में आई। पहले तो बाहर से ही पुकारा, "दीपू, ओ दीपू, उठो !"

दीपू की तरफ से कोई जवाब नहीं आया तो पास आकर उसकी पीठ पर हाथ फेरकर कहा, "दीपू, उठो ! खाना नहीं खाओगे ?"

दीपू ने आंखें नहीं खोलीं। बोला, "नहीं, नहीं खाऊंगा।"

"क्यों ? खाओगे क्यों नहीं ?"

"भूख नहीं है।"

"तो क्या बेवक्त सोते रहोगे ? उठकर नहा-धो लो, फिर खाकर सोने

की इच्छा हो तो सो जाना।"

"कहा न, भूख नहीं है!"

"इस तरह से झुंझलाते क्यों हो?"

"दीदी, मुझे तंग मत करो।"

अपर्णा खाट से लगकर थोड़ी देर तक खड़ी रही। फिर आंचल से अपना मुंह पोंछा। लगता है, कुछ देर पहले वह रोती रही है, दोनों आंखें अभी भी लाल हैं।

साफ गले से फिर बोली, "तुम आज बेकार ही बिगड़ते रहे। पिताजी ने तुम्हारी भलाई के लिए ही तो…"

बीच में ही उसकी बात काटकर उसने कहा, "मेरे भले के लिए किसी को नहीं सोचना है।"

अपर्णा गंभीर स्वर में बोली, "तुम समझ रहे हो कि तुमको झूठे ही तार देकर बुलाया गया है। इस तरह से कोई भला तार भेजता है। इंटर-व्यू की बात तो कल शाम को सुहासबाबू कह गये। परसों आधी रात को पिताजी उनींदी अवस्था में ही गुसलखाने गये, उसी समय हठात् बेहोश हो गये।"

"मामूली चोट आते ही कहीं तार भेजा जाता है! इस तरह से चोट लगने पर कुछ नहीं होता।"

"दीपू, तुम बेवकूफों जैसी बातें करते हो!" अपर्णा ने खीजकर कहा, "पिताजी चोट खाकर बेहोश नहीं हुए। ऐसे ही हठात् बेहोश होकर गिर पड़े थे। 'स्ट्रोक' होने की तरह, कुछ बोल नहीं पाये थे। उसी रात को पड़ोसी के यहां से मौसा को फोन करके बुला लिया था। होश आते ही पिताजी बोले, 'दीपू को फौरन तार भेज दो कि वह लौट आये। मैंने बड़ा खराब सपना देखा है। मैंने सपने में देखा है, दीपू के साथ एक दुर्घटना हुई है। तभी से मेरी छाती धड़क रही है। एक डाकबंगले के सामने…"

एक विचित्र प्रकार के कौतूहल से दीपू हड़बड़ा कर उठ बैठा। बोला, "कहां? मुझको सपने में कहां देखा पिताजी ने?"

"पिताजी आज सुवह उसी सपने के वारे में कह रहे थे। एक डाक-वंगला, चारों तरफ जंगल···उसी मैदान में तुम गिरे पड़े हो ! पिताजी को लगा था कि किसी ने तुम्हारे सिर पर कुछ दे मारा है। इस सपने को देखने के वाद ही गुसलखाने में जाते हुए पिताजी वेहोश होकर गिर पड़े थे।"

दीपू ने अस्फुट स्वर में कहा, "हेसाड़ा !"

चाइवासा से अरूप के साथ ही हेसाड़ा के वंगले में जाने की वात थी। वहां जाने पर क्या कोई विपत्ति आ सकती थी ? सपने का सच्चाई से कोई सीधा संवंध है क्या? लेकिन तार मिलने के वाद दीपू ने आंख वंदकर अंदर-ही-अंदर देखा था कि हेसाड़ी वंगला के पास पिताजी चक्कर लगा रहे हैं। तव क्या पिताजी वहां पर पहरा दे रहे थे ? सपने में ही ? इसका क्या अर्थ है ? दीपू हतप्रभ होकर विस्तरे की चादर के डिजाइन को देखने लगा।

"चलो उठो। नहा लो। कितना समय हो गया है। खाओगे नहीं ?"

"थोड़ी देर वाद।"

"दीपू, एक वात कहती हूं। मानोगे ?"

"क्या ?"

"इंटरव्यू में चले जाना। जल्दी से नहा-खा लो तो समय पर पहुंच जाओगे। नौकरी न भी मिले तो न सही, लेकिन एक वार जाने में हर्ज ही क्या है ?"

"नहीं।"

"तो नहीं जाओगे ?"

"कहा तो कि नहीं।"

६

दोपहर की नींद से उठकर दोनों सखियां बरामदे में बैठकर बातें कर रही थीं। हाथ में चाय का प्याला थामे दोनों बातों में मशगूल थीं। आज माधुरी ने चाय बनायी है। शुभ्रा ने पूछा, "तुम किस दुकान से चाय खरीदती हो? लक्की स्टोर्स से? मेरी चाय में तो इतनी अच्छी महक होती ही नहीं।"

माधुरी बोली, "हर महीने वह खुद बड़े बाजार से चाय खरीद लाते हैं। चाय अच्छी न होने पर पीना ही पसंद नहीं करते।"

"अच्छा, दाम तो इसका कुछ ज्यादा ही होगा?"

"बारह रुपये किलो।"

"बाप रे बाप! नीलांजन दा की पसंद की दाद देती होगी।"

"केवल चाय को लेकर ही। दूसरी तरफ भी तो देखो। दो-दो, तीन-तीन दिन बाजार ही नहीं जाते।"

"उन्हें फुरसत नहीं मिलती। वह जब बाजार जाते हैं तब उनको कह तो सकती ही हो।"

"कहूंगी, कई बार सोचा है। लेकिन रतन दा इतनी जल्दी बाजार जाते हैं कि ख्याल ही नहीं रहता।"

"ठीक है, कह दूंगी। कल से तुमसे पूछकर बाजार जायंगे।"

नीलांजन और रतन दा दोनों पुराने मित्र हैं। भाग्य की बात कि दोनों की पत्नियां भी आपस में पुरानी सखियां हैं। माधुरी और शुभ्रा दोनों एक ही साल में आशुतोष कालेज में पढ़ती थीं। माधुरी का यह प्रेम-विवाह है, मगर शुभ्रा का विवाह रीति-नीति के अनुसार हुआ।

शुभ्रा ने उसकी ओर देखकर पूछा, "तुमने इस सप्ताह राशन लिया है?"

"हां भाई, कितना घटिया चावल मिला है, कंकड़ों से भरा हुआ।"

चावल लेती क्यों हो ? वाजार में भी तो प्रायः इसी दाम में मिल रहा है । मैं तो वस चीनी लेती हूं ।"

"ठीक याद दिलाया । रतन दा को कहकर थोड़ा-सा चावल मंगा लूंगी, तुम्हारे लिए भी । अगले हफ्ते उनके मित्र यहीं खाना खायेंगे । रतन दा काफी अच्छा सामान खरीद लेते हैं ।"

"हां, तभी वाजार जाना तो उनका नशा है । वहां से पूरा एक घंटा लगा देते हैं लौटने में । चीजें खरीदें या नहीं, मगर दाम सवका जरूर पूछेंगे ।"

"यह भी अच्छा है । हमारे वह तो जल्दवाजी में जो सामने पड़ गया, वही उठाया, और खरीद लिया ।"

"नीलांजन दा तो कल वन्दगोभी खरीदकर ले आये थे न ? अभी तो वन्दगोभी का दाम वहुत ज्यादा होगा ।"

"यही तो कहा, निगाह के सामने पड़ गई होगी ।"

"सुनो, मैंने मां से सीखा है, वन्दगोभी थोड़ा उवालकर सुखा दो तो काफी दिनों तक टिक जाती है । स्वाद भी…"

माधुरी हठात हंसने लगी ।

शुभ्रा ने चौंककर पूछा, "हंसने क्यों लगी ?"

"शादी के वाद सचमुच हम सव वदल जाती हैं । आगे हम दोनों के वीच कितनी तरह की बातें होती थीं, मगर अव तो केवल वंदगोभी औ चावल में कंकड़…"

शुभ्रा भी हंसने लगी । वोली, "इसी वात को लेकर मां मौसी हंसती थी, आज हम भी ठीक उन्हीं लोगों की तरह हो गये हैं ।"

"तुमको याद है, एक दिन हम दोनों के वीच, कालेज से निकलने वाद, वुद्धदेव वसु के नाटक पर कितनी वहस हुई थी । कोई दो घंटे त

"अव तो किताव पढ़ने तक का समय नहीं मिलता । नीलांज आज कितनी देर में आयेंगे ? चलो न, आज कोई सिनेमा देख आयं । लौटते-लौटते दस तो वजेंगे ही ।"

"वह भी सात बजे से पहले लौटनेवाले नहीं हैं। नाइट शो देखा जा सकता है।"

तभी शुभ्रा ने दीपू को आते हुए देखा। बोली, "वह देखो तुम्हारे देवरजी आ रहे हैं।"

माधुरी ने पूछा, "कहां! अरे, वह तो कहीं बाहर गया हुआ था। इतनी जल्दी कैसे लौट आया?"

"दीपू तो दिन-दिन लंबा होता जा रहा है। नीलांजन दा से भी लंबा, है न?"

"हां, उसको पिताजी का ही चेहरा मिला है। दीपू की सेहत बढ़िया हो गई है।"

सीधे बरामदे में आकर एक मोढ़े पर बैठते ही दीपू बोला, "भाभी, चाय बनाओ, पूरी बनाओ, दुकान से मिठाई मंगाओ, बड़ी भूख लगी है।"

हंसी को होंठों के बीच दबाकर माधुरी बोली, "ओह, इनके लिए मैं अभी पूरी बनाने बैठूं! क्यों, इतनी भूख कैसे लग आई?"

"आज दोपहर खाना नहीं खाया।"

"क्यों, दोपहर को क्यों नहीं खाया? कब लौटे?"

"सुबह ही लौटा हूं। मंझली दीदी से झगड़ा हो जाने के कारण दोपहर को खाना नहीं खाया।"

"आज फिर दीदी से झगड़ा हुआ? किस बात पर?"

दोनों आंखें झपकाते हुए दीपू बोला, "यह तुमसे क्यों कहूंगा? अपने घर के झमेलों के बारे में तुम्हें क्यों बताऊंगा? तुम तो हमारे घर की कोई हो नहीं।"

"आहा, बस खाने के समय मेरे साथ संबंध रहेगा! तुम दीदी से झगड़ा करो और मैं तुमको खिलाऊं! दीदी समझेगी कि मैंने ही तुम्हें सिखाया है।"

"वाह, मैं उसी बात के लिए तुमसे खाना थोड़े ही मांगने आया हूं। तुम्हें एक अच्छी खबर देनी है।"

शुभ्रा ने उत्सुकता से पूछा, "कौन-सी खबर ?"

माधुरी बोली, "इसकी बात पर एकदम विश्वास मत करो। यह रोज ही इसी तरह की बातें करता रहता है।"

उधर ध्यान न देकर दीपू बोला, "ओ शुभ्रादी, तुम्हारी मां ने जो लड्डू बनाकर भिजवाये थे; वे क्या सब खतम हो गये। दोठो दो न।"

"वे तो कभी के खतम हो गये। तुम तो दस-बारह दिन पहले आये थे!"

"मेरे लिए दोठो रख नहीं सकीं ?"

"भला तुम्हारे लिए क्यों रखूंगी ? कौन-से तुम लड्डूगोपाल हो।"

दोनों सखियां मुक्त भाव से हंसने लगीं। दीपू ने चेहरे को और भी कातर बनाकर उनको हंसने का मौका दिया।

हंसी थमने पर माधुरी बोली, "सवेरे का थोड़ा भात रखा है। गरम कर दूं ?"

"धत्, शाम को भात क्या खाऊंगा! कहा तो, पूरी बनाओ।"

"ऐसी क्या गरज पड़ी है, जो पूरी बनाऊं!"

शुभ्रा बोली, "तो दीपू आ ही गया है। दीपू, तुम्हीं हम दोनों को आज शाम को सिनेमा दिखाओ न!"

अपनी गोल-गोल आंखों से देखते हुए दीपू बोला, "मैं सिनेमा दिखाऊं? मेरे पास एक भी पैसा नहीं है। मैं भाभी के पास खुद ही पांच रुपये उधार मांगने आया हूं।"

माधुरी खिलखिलाकर हंसते हुए बोली, "उधार! कोश में उधार का मतलब भी कभी देखा है ? इसके आगे और कितनी बार लिया है ?"

"सब चुका दूंगा, सब। कोई ऐसा तरीका अपनाऊंगा कि तुम देखती रह जाओगी!"

"तुम जो भी कहो, तुम्हारे भैया ने तुम्हें रुपये देने से मना किया है।"

दीपू एकदम चीख पड़ा, "ऐसा नहीं हो सकता। मैं सबसे कह दूंगा

कि भाभी के कारण ही भैया कंजूस हो गये हैं। भैया और मैं जब एक ही साथ रहते थे तव वह वरावर एक-दो रुपये दिया करते थे। अव शादी करके भैया की यह हालत हो गई है!"

माधुरी के चेहरे पर कोई परिवर्तन नहीं आया। वोली, "तुम चाहो जो कहो, तुम्हारे भैया ने मुझसे कहा है कि दीपू को कभी पैसा मत देना। पता नहीं, क्या करता है।"

दीपू वोला, "भाभी, दाढ़ी वनाने के लिए एक ब्लेड भी नहीं है।"

"रुको, चाय का पानी चढ़ाकर आती हूं।"

माधुरी के अंदर जाते ही दीपू मोढ़े से उठकर रेलिंग से सटकर खड़ा हो गया। आज भी टालापार्क के टैंक के पीछे से वादलों का मानो पहाड़ उठ आया है, उसी तरफ देखते हुए शुभ्रा की उपस्थिति की वह जान-बूझकर उपेक्षा कर गया।

शुभ्रा ने धीरे से कहा, "तुमको कितने रुपये की जरूरत है?"

उसकी तरफ विना देखे हुए दीपू वोला, "मैं तुम्हारा रुपया नहीं लूंगा।"

"क्यों, मेरा रुपया लेना कोई पाप है?"

"तुम मुझसे यह सव क्यों कहती हो, शुभ्रा?"

"दीपू, तुम इतने गुस्से में क्यों हो?"

"मैं रतनदा से एक दिन सारी वातें कह दूंगा।"

"क्या कह दोगे?"

तभी माधुरी लौटी। शुभ्रा ने वात वदल कर जोर से कहा, "माधुरी, अगर हम टिकट का दाम दें, तो दीपू हम दोनों को सिनेमा नहीं ले जा सकता क्या?"

माधुरी बोली, "क्यों दीपू, जाओगे?"

शुभ्रा ने कहा, "चलो न, भाई। समझो कि आज हम लोगों के लिए ही तुमने अपनी शाम खर्च कर दी।"

दीपू दूसरी तरफ देखते हुए बोला, "नहीं, शुभ्रादी, आज सिनेमा

देखने का मन नहीं है। तुम दोनों खुद ही क्यों नहीं चली जातीं।"

शुभ्रा बोली, "माधुरी, ठीक है आज हम दोनों ही सिनेमा चलें। साथ में मर्द न हो तो क्या हम सिनेमा नहीं जा सकतीं ?"

माधुरी का चेहरा उसके मन की बातें नहीं छिपा पाता। उसको देखकर कोई भी समझ सकता था कि वह हिसाब कर रही है कि महीनें का अंत है। सिनेमा जाने के लिए पैसा खर्च कर पायेगी कि नहीं। दीपू ताड़ गया। वह हंस पड़ा।

माधुरी बोली, "हां, जाया जा सकता है। लेकिन घर पर कौन रहेगा ? वह थोड़ी देर बाद ही आयंगे !"

"दीपू जो है।"

दीपू बोला, "हां, मुझे कोई आपत्ति नहीं है। भैया के साथ भी मुलाकात हो जायगी। मैं.उनसे मिलकर ही जाऊंगा। तुम लोग सिनेमा जाओ, मैं बरामदे में बैठकर किताब पढ़ूंगा। मगर भाभी, जाने के पहले मुझे पांच रुपये दे जाओ।"

"कहा न, तुम्हारे भैया ने तुमको रुपये देने से मना किया है।"

"बेकार की बात मत करो। भैया कभी इन्कार नहीं कर सकते। तुम्हारे पास रुपये नहीं हैं, यह कहते हुए क्या शर्म आ रही है ? शुभ्रादी से उधार लेकर दे दो।"

माधुरी थोड़ा असमंजस में पड़ गई। फिर भी अपने भीतर के भाव को छिपा नहीं सकी। उसी दशा में उसने कहा, "कौन कहता है कि मेरे पास रुपये नहीं हैं ?"

दीपू बोला, "मैं ठीक जानता हूं। शुभ्रादी के पास हर घड़ी पैसे रहते हैं, उधार ले लो न !"

शुभ्रा शरारत के स्वर में बोली, "मेरे पास क्या हमेशा रुपये रहते हैं ? मैं क्या कोई बैंक हूं !"

शुभ्रा रास्ते की तरफ पीठ करके खड़ी थी। डूबती हुई शाम की गाढ़ी लाल रोशनी मानो उसके शरीर को पार करके सामने से आ रही थी।

उसका सफेद चेहरा फ्लूरोसेंट बल्ब की तरह लग रहा था। शुभ्रा कोशिश कर रही थी कि दीपू से निगाह मिलाये, लेकिन दीपू अपनी निगाह मिलने नहीं दे रहा था।

माधुरी बोली, "तुम्हारे लिए मैं उधार क्यों लूंगी ?"

"क्योंकि मैं तुमको एक अच्छी खबर देने आया हूं। जल्दी ही कुछ जायदाद तुम्हें मिलेगी।"

माधुरी का चेहरा विश्वास-अविश्वास के बीच झूलने लगा। शुभ्रा भी उत्सुक हो उठी। दीपू बोला, "पिताजी घर बेचे दे रहे हैं।"

माधुरी का चेहरा एकदम उतर गया, धीमे स्वर में कहा, "तुम्हारे पिताजी मकान बेच देंगे, इससे हमें क्या ?"

"वाह, भैया हमसे बड़े हैं। उनको भी तो उसका एक हिस्सा मिलेगा ?"

"नहीं।"

"नहीं का मतलब ? पिताजी अगर देना नहीं भी चाहें तो मैं जिद्द करके दिलवाऊंगा।"

"तुम्हारे पिताजी के देने पर भी तुम्हारे भैया नहीं लेंगे।"

"लेंगे क्यों नहीं ? भैया को अधिकार है।"

"तुम्हारे भैया अगर लेना भी चाहेंगे तो मैं मना कर दूंगी। मैं उनको लेने ही नहीं दूंगी।"

माधुरी की आवाज की दृढ़ता दीपू को बड़ी अच्छी लगी ! भाभी हीरे की तरह हैं। शुभ्रा क्या इस तरह से कह सकती थी ?"

"इसका मतलब यह हुआ कि पांच रुपये मिलेंगे नहीं ? ठीक है, भैया को आने दो। उन्हींसे मांग लूंगा।"

माधुरी इस बार थोड़ा मुस्कराकर बोली, "हां, यही ठीक रहेगा।"

माधुरी जानती है कि दीपू किसी दिन भी भैया से मुंह खोलकर मांग नहीं सकता। जितनी उछल-कूद है वह भाभी के सामने ही है।

शुभ्रा बोली, "माधुरी, तो सिनेमा चलोगी ? मैं तैयार हो जाऊं।

देर से जाने पर टिकट कहां मिलेगी ?"

उत्साहित होकर माधुरी बोली, "ठीक है, तैयार हो जाओ। दीपू, तुम रहोगे न ?"

"हां !"

"ठहरो, मैं तुमको चाय दे दूं। घुघनी है, पाव रोटी के साथ खाओगे? तुम्हारे भैया आकर अगर खाने के लिए मांगें तो कहना कि दुकान से मंगा लें।"

"ठीक है, तुम जाओ।"

इसके बाद माधुरी गुसलखाने में चली गई। शुभ्रा अपने कमरे में जाकर कपड़ा बदलने लगी। दीपू सोचने लगा, पास में सिगरेट होती तो अच्छा होता। दीपू जेब में सिगरेट और दियासलाई नहीं रखता। भाभी के कमरे में जाकर खोजा। भैया का सिगरेट का कोई पैकेट शायद रखा हो। पर नहीं मिला।

दीपू फिर बरामदे में आकर मोढ़े पर बैठ गया और रास्ते में चलते हुए आदमियों की भीड़ देखने लगा। शुभ्रा अबतक चाय बनाकर नहीं लाई। वह प्रतीक्षा करने लगा। तभी शुभ्रा के कमरे का दरवाजा खुला। शुभ्रा सज-धजकर तैयार हो चुकी थी। वैसे चेहरे पर लगाया हुआ पाउडर अभी भी साफ तरीके से पोंछा नहीं गया था। दीपू ने झुंझलाते हुए पूछा, "चाय नहीं बनाई न ?"

"दे रही हूं। ओह, इतना गुस्सा ! देखना, कहीं गुस्से से फट न पड़ो !"

"जल्दी से चाय ले आओ। तुम लोगों के पास ज्यादा समय नहीं है।"

यह भी एक विचित्र बात है। शुभ्रा और रतनदा दोनों एक-दूसरे को चाहते हैं। भाभी ने कहा था, दीपू ने स्वयं भी अपनी आंखों से देखा है, तब भी शुभ्रा उसके साथ इस तरह की शैतानी क्यों करना चाहती है ! शादी के पहले शुभ्रा उसकी मित्र थी, क्या इसलिए ? लेकिन शादी के पांच-छह दिन पहले एक रेस्तरां में बैठकर दीपू के सामने रो रही थी।

"शुभ्रा, जरा सुनना।"

"आती हूं।" शुभ्रा ने जवाब दिया।

दीपू उठकर रास्ते की ओर मुंह करके खड़ा हो गया। पांच रुपये तो किसी भी तरह लिये नहीं जा सकते यहां से।

शुभ्रा लौटकर बोली, "दीपू, मैंने तुमको बहुत दुख दिया है न ?"

"हां, भाभी अगर जान जातीं..."

"सचमुच बहुत दुख देती हूं। तुम मुझे अब और प्यार नहीं करते न ?"

"क्या कभी प्यार किया भी है तुमको ?"

"नहीं।"

दीपू हो-हो करके हंस पड़ा। उसकी आंखों में देखकर शुभ्रा ने दीपू की हंसी का मर्म समझा। थोड़ा लज्जित होकर बोली, "अब इस तरह की बातों में रखा ही क्या है ! फिर तुम मुझसे एक वर्ष छोटे भी हो। क्या तुम्हारे साथ मेरी शादी संभव थी ?"

"फिर वही पागलपन ? मैं तुमसे कभी शादी ही नहीं करता। रतन दा कितने अच्छे आदमी हैं।"

"लेकिन मैं तुमको अभी भी..."

माधुरी को उस ओर आते देख शुभ्रा ने जरा जोर से पूछा, "दीपू, और चाय लोगे ?"

"नहीं।"

दोनों सज-धजकर तैयार। अब निकल पड़ेंगी। लेकिन दीपू को फिर भी विश्वास नहीं हो रहा है कि इनका आज सिनेमा देखना संभव हो सकेगा। वह निर्निमेष माधुरी के चेहरे को ताके जा रहा है। भाभी ने भी क्या शादी के पहले किसी से प्रेम किया है ? और किया हो तो, वह प्रेमी बेचारा यहां आ नहीं सकता !

तभी नीलांजन आ गये। अचकचाकर माधुरी बोली, "अरे, तुम आज इतनी जल्दी आ गए ?"

नीलांजन ने मुस्कराकर कहा, "क्यों, आकर तुम लोगों के कार्यक्रम में

बाधा डाल दी है क्या ?"

माधुरी ने हंसी में कहा, "जिस दिन जल्दी आने को कहूंगी, उस दिन कभी भी ठीक समय पर नहीं आओगे।"

नीलांजन ने उसके मजाक को समझा और उसीके स्वर में बोले, "ठीक है; जल्दी आकर गुनाह किया है तो लौट जाता हूं। मगर इतना सज-धज-कर बाहर जा रही हो क्या ?"

शुभ्रा बोली, "नीलांजन दा, आप जब आ ही गये हैं, तो हम दोनों को सिनेमा दिखाने ले चलिये।"

"सिनेमा ?"

"हां, बहुत दिनों से सिनेमा नहीं देखा है। चलिये न।"

"तुम लोगों ने खबर सुनी नहीं है शायद। हातीबागान के मोड़ पर बड़ा बखेड़ा हो रहा है। आंसू गैस छोड़ी गयी है। अबतक गोली भी चल गई हो तो कह नहीं सकता।"

"अच्छा, तो यही वजह है कि बस, ट्राम सब दूसरी तरफ से आ-जा रही हैं। मुझे बस में धुएं-जैसा कुछ लगा था। अभी भी आंखें जल रही हैं। अच्छा ही किया जो अबतक निकली नहीं।"

"आज उपद्रव किस बात को लेकर हुआ ?"

"आरंभ हॉकरों और छात्रों के झगड़े से हुआ। उसके बाद जो होता आया है वही पुलिस के साथ जनता की मुठभेड़।"

शुभ्रा निराश होकर बोली, "धत्, रोज कोई-न-कोई झमेला लगा ही रहता है।"

नीलांजन ने कहा, "तुम दोनों जब तैयार हो तो चलो, कहीं आस-पास घूम आवें।"

"नहीं, अब मेरी जाने की इच्छा नहीं है। आप बल्कि माधुरी के साथ कहीं घूम आइये।"

माधुरी बोली, "मैं भी कहीं नहीं जाऊंगी। दीपू आया है।"

दीपू बरामदे में बैठा सुन रहा था। पता नहीं क्यों, उसे मन-ही-मन

लगा था कि भाभी आज सिनेमा नहीं जा सकेंगी। मन की बात पूरी होते देख उसे खुशी हुई।

नीलांजन बरामदे में आकर बैठे। जूता खोलते-खोलते बोले, "पुनि, टुलटुल वगैरा कैसे हैं ?"

सात-आठ वर्ष पहले दोनों भाई मित्र की तरह थे। कभी दीपू अपने भैया का अंधभक्त था। अगर उस समय कोई दीपू से पूछता कि वह बड़ा होकर क्या बनेगा तो वह जवाब देता, अपने भैया की तरह बनूंगा। यद्यपि हीरो का कोई गुण नहीं था नीलांजन में। पढ़ने-लिखने में साधारण रूप से ठीक थे, लेकिन कभी प्रथम नहीं आये। खेल-कूद में भी कभी नाम नहीं कमाया। केवल एक ही विशेष गुण उनमें था, पर वह भी ऐसा नहीं, जिस-पर लोगों की नजर पड़ सके। लेकिन बचपन में दीपू को सबसे ज्यादा उसी गुण ने आकर्षित किया। नीलांजन को झूठ बोलते कभी किसी ने नहीं सुना। भैया की तरह और किसी भी बड़े श्रद्धेय व्यक्ति में ऐसी कठोर सत्यवादिता देखने को नहीं मिली थी दीपू को। नीलांजन न केवल स्वयं झूठ नहीं बोलते, बल्कि उनके सामने दूसरों को भी साधारणतया झूठ बोलने का अवसर नहीं आता। जबतक भैया उसके आदर्श रहे, दीपू के मन में उनके प्रति एक विशेष लगाव रहा। लेकिन जब वह प्रत्येक काम में झूठ-सच को अलग-अलग करके नहीं देख सका तो भैया से थोड़ी दूरी पैदा होने लगी। फिर नीलांजन घर के बाहर अन्य कार्यों में व्यस्त रहने लगे और दीपू के साथ उनकी मुलाकातें कम होती गईं। अब तो हालत यह है कि दोनों भाई एक-दूसरे के लिए अजनबी हैं। वही नीलांजन जो बाहर राजनीति में हिस्सा लेते हैं, जो माधुरी के पति हैं, जब दीपू से बड़े भाई के रूप में बातें करते हैं तो उनकी आवाज बदल जाती है।

दीपू ने उत्तर दिया, "अच्छे हैं।"

"रुनूदा ने और कोई चिट्ठी दी है ?"

"नहीं।"

"रुनूदा इस तरह आदमीयत ही भूल जायंगे, यह तो कभी सोचा

नहीं था।"

"हो सकता है, रुनूदा पूरी तरह दोषी न हों। दीदी को उसी समय भेज देना चाहिए था।"

"भेजता कैसे ? टुलटुल उस समय छः महीने की थी। फिर उन्होंने खर्चा भी तो नहीं भेजा था।"

मंझली दीदी के पति रुनूदा हठात् एक वजीफा पाकर पश्चिम जर्मनी चले गये थे। दीदी उस समय गर्भवती थीं। तय था कि वर्ष-भर के अंदर रनेन खुद आकर अपनी पत्नी को साथ ले जायंगे। लेकिन रुपये नहीं भेज सके। वहां वड़ा खर्च है, वजीफे के पैसे से अपनी ही गुजर मुश्किल से हो रही है—यही सव उन्होंने लिखा था। शुरू में रनेन खूव लम्वे-लम्वे पत्र लिखते रहे, लेकिन डेढ़ वर्ष के वाद उनके पत्र आना कम हो गए तो कानाफूसी होने लगी कि अकेलापन काटने के लिए उन्होंने वहां एक मेम को रख लिया है। मौसा खुद ही वहां जाकर अपनी आंखों से देख आये थे। उसके वाद भी रनेन ने पत्र भेजा और मेम वाली वात को अस्वीकार किया; लेकिन दीदी को कव ले जायंगे, इसके वारे में कुछ भी नहीं लिखा। सात वर्ष गुजर गये, अव उनके लौट आने की आशा कम ही है।

नीलांजन वोले, "टुलटूल स्कूल जाने लगी है न ? देखना, उसकी पढ़ाई-लिखाई ठीक तरह से हो।"

"वह इस वार क्लास में अव्वल आई है।"

"यह वात है ! वहुत दिनों से उसे देखा नहीं है। एक दिन उसको लेकर आना यहां। पुनि क्या अभी भी यहां आना नहीं चाहती ?"

"नहीं।"

नीलांजन कुछ उदास हो गए। अन्यमनस्क थोड़ी देर तक सामने की ओर ताकते रहे। इसके वाद विषय वदलकर पूछा, "छोटी मौसी आती हैं क्या ?"

दीपू जानता है कि भैया अपनी तरफ से कभी भी पिताजी की वात नहीं पूछेंगे। प्रतीक्षा कर रहे हैं कि कव दीपू अपने आप कहता है। दीपू

सोच रहा था कि अभी पिताजी की बात कहने का समय नहीं आया। लेकिन परोक्ष रूप से बात चल ही पड़ी।

नीलांजन ने पूछा, "तुम्हारा अब क्या करने का विचार है?"

असुविधाजनक स्थिति से बचने के लिए दीपू ने फौरन कह दिया, "पिताजी की तबीयत खराब हो गई थी, आपको खबर नहीं मिली?"

नीलांजन हकबकाकर बोले, "नहीं तो। क्या हुआ था?"

"नरसों रात के समय हठात् बेहोश होकर गिर पड़े थे।"

"स्ट्रोक था क्या?"

"ठीक स्ट्रोक तो नहीं था। सपने से चौंककर हड़बड़ी में गुसलखाने की ओर जाते हुए गिर गये।"

"सपना देखकर? कैसा सपना?"

बात बनाने में थोड़ा भी समय नहीं लगा दीपू को। उदास स्वर में बोला, "पिताजी ने देखा कि मैदान में पुलिस गोली बरसा रही है, और आप वहीं पर···माउंटेड पुलिस के एकदम सामने···"

सपने की बात सुनकर थोड़ी देर के लिए विचलित नीलांजन एकदम चुप हो गए, लेकिन दीपू को अपने मन की यह अवस्था समझने देना नहीं चाहते। दीपू भैया का चेहरा देखने लगा। दोनों के मन में उथल-पुथल हो रही थी।

तभी दो प्लेट पूरी लेकर माधुरी आ गई। दीपू से बोली, "देखो, आखिर तुमको पूरी खिलाई न!"

दीपू बोला, "वाह, सिर्फ मेरे ही लिए तो नहीं बनाई हैं।"

खाने के बाद नीलांजन बोले, "तुम आज यहीं रुक जाओ, दीपू। बाहर उपद्रव हुआ है, घर के लोग चिंता करेंगे। पास के घर से फोन कर देना।"

दीपू खड़ा हो गया, बोला, "नहीं, मैं जाऊंगा।"

माधुरीने आपत्ति की, "जाओगे क़िस तरह? उपद्रव अब भी हो रहा हो तो?"

दीपू दोनों हाथ उठाकर नचाते हुए बोला, "एक ही छलांग में सा उपद्रव को पार कर जाऊंगा। चलूं, अब !"

नीलांजन ने कहा, "पिताजी की तबीयत के बारे में खबर देते रहना मेरे आफिस में तो फोन कर ही सकते हो।"

७

लेडी ब्रेबोर्न कालेज के गेट से थोड़ी दूर अरूप अपनी मोटर गाड़ी मे बैठा था। अभी ड्राइविंग लाइसेंस नहीं मिला और उसको अकेला गाड़ी लेकर निकलना मना है, फिर भी घर से निकलते ही उसने ड्राइवर की छुट्टी कर दी और कह दिया कि ठीक सात बजे घर के पास, गली के मोड़ पर, वह इंतजार करे। सिर्फ पार्किंग करते समय उसे थोड़ी दिक्कत होती है, वरना अरूप गाड़ी अच्छी चला लेता है।

कोई पंद्रह मिनट पहले पानी बरसना बंद हुआ था। पार्क सर्कस मैदान की निखरी हुई हरी दूब धूप में तलवार की तरह चमक रही थी। और अरूप कालेज के गेट से निकल रही झुंड-की-झुंड लड़कियों की तरफ देख रहा था। किसी भी लड़की के चेहरे पर उसकी निगाह ठहर नहीं रही और न किसी का पीछा ही कर रही थी। वह केवल सपना को खोज रहा था।

सपना के लिए भी घर से गाड़ी आती है। सपना आई। उसने आसमानी नीले रंग की साड़ी पहन रखी थी। ब्लाउज का रंग और हाथ में लटके बैग का रंग भी नीला था। ललाट की बिंदी भी नीली ! हार्न पहचाना हुआ है। सपना ने चौंककर इधर-उधर देखा। अरूप को देखते ही ओठ, आंखें—पूरे चेहरे पर मानों खुशी बिखर गई। उसने अपने ड्राइवर

को लौट जाने के लिए कह दिया। दोनों परिवारों को पता है, लुकाव-छिपाव कुछ भी नहीं। सपना अपने ड्राइवर को 'आप' कहकर संबोधित करती है। बोली, "मां को बता दीजियेगा, अरूपबाबू मुझे पहुंचा देंगे।"

फिर उसने अरूप से कहा, "तुम कितनी देर से खड़े हो? सौभाग्य से मैं जल्दी ही निकल आयी। हमलोगों का एक ट्यूटोरियल होनेवाला था।"

अरूप ने जवाब दिया, "ओह साढ़े चार बजे फिर क्लास! इतना पढ़-लिखकर क्या होगा?"

"वाह, पिछले सप्ताह दो दिन तो हड़ताल थी?"

"आगे से मैं तुम्हारे पास इस तरह आ नहीं सकूंगा।"

"क्यों?"

अरूप के चेहरे से प्रसन्नता फूट रही थी। गर्व का कुछ अहसास भी था। बोला, "अगले सप्ताह से पिताजी ने मिशन रो वाले आफिस में बैठने के लिए कहा है। दूसरे लोगों की तरह मुझे भी दस से पांच बजे तक दफ्तर में रहना होगा।"

"दोपहर का खाना कहां खाओगे?"

"मां ने तो कहा कि घर से भेजेंगी, मगर मैंने नहीं माना, कह दिया कि बाहर खा लूंगा।"

"वाह, बहुत बढ़िया! मैं भी कालेज से भागकर तुम्हारे ही साथ खाया करूंगी।"

"सचमुच आओगी?

मिलने का एक रास्ता सहज ही निकल आया, इसलिए दोनों खुश थे। अरूप ने अपना बायां हाथ सपना के हाथ पर रख दिया। सपना ने गोद में पड़ी किताबें बगल में रखते हुए कहा, "इसीलिए चाईबासा से इतनी जल्दी लौट आये?"

"नहीं, इसलिए नहीं।"

"वहां तो खूब जंगलों में रहे होगे? पहाड़ पर चढ़े थे? कभी मुझे

लगा, हमेशा चश्मा नहीं पहने रहती।

अरूप बोला, "बहुत सुंदर है।"

सपना ने टिप्पणी की, "और बेहद फुर्तीले। नूपुर को तो पहचानते ही हो, उसकी सखी है। मेरा परिचय पिछले सप्ताह हुआ। अकेली स्वच्छंद ट्राम-बस पर आती-जाती है।"

अरूप ने हंसकर कहा, "ट्राम-बस पर महिलाओं का चलना तो फुर्तीलापन नहीं है। कई चलती हैं। लेकिन यह कुछ ज्यादा फुर्तीला लगती है, नहीं तो दीपू से इसकी मित्रता अधिक टिकती नहीं !"

"उसको बुलाऊं ?"

"हां, बुला लो।"

सपना गाड़ी का दरवाजा खोलकर उतरी और उस महिला को साथ लिये लौट आई। अरूप इस बीच दरवाजा बंद करके खड़ा था। सपना बोली, "परिचय करा दूं—शांताराय चौधरी, और ये हैं अरूप घोषाल।"

हाथ जोड़कर शांता बोली, "आप ही तो दीपू दा के साथ चाईबासा गये थे।"

"जी हां। आइए, कॉफी पी जाय।"

कलाई पर बंधी घड़ी की तरफ देखकर शांता बोली, "आज नहीं, किसी और दिन आपसे खूब बातें होंगी। आज तो मुझे जल्दी कालेज स्ट्रीट पहुंचना है।"

पहली बार के परिचय में किसी लड़की से किसी भी बात के लिए ज्यादा आग्रह नहीं करना चाहिए, यह अरूप जानता है। वह चुप रहा।

सपना बोली, "थोड़ी देर बैठिए। हम आपको कालेज स्ट्रीट पहुंचा देंगे।"

"नहीं जी, आप क्यों तकलीफ करें ?" कहकर शांता ने पूछा, "आप लोगों को भी उधर ही जाना है क्या ?"

"हम लोगों को कहीं जाना नहीं है। ऐसे ही घूमने निकले हैं। इसलिए कालेज स्ट्रीट भी जा सकते हैं।"

तब चलिये, कालेज स्ट्रीट के कॉफीहाउस में ही कॉफी पी लेंगे।"

अरूप ने पूछा, "सपना, चलोगी ?"

सपना बोली, "नहीं, कॉफी यहीं पी जाय। वहां बहुत शोर होता है।"

शांता ने थोड़ा हंसकर कहा, "कई लोग तो सिर्फ शोर के ही लिए वहां जाते हैं। मुझे एकदम शांत जगह बहुत अच्छी नहीं लगती। चलिए, आज यहीं सही।"

रेस्तरां के भीतर बहुत ठंडक, अंधेरा और एकदम शांति थी। सभी धीमी आवाज में बातें कर रहे थे। लड़के-लड़कियां बैठे थे, उनकी बातें अधिकतर आंखों-आंखों में ही हो रही थीं। यहां के बैरे अरूप को पहचानते थे। एक ने सलाम ठोककर कुर्सी आगे कर दी।

एक मिनट की चुप्पी के बाद अरूप ने कॉफी और सैंडविच का आर्डर दिया। उसे मालूम था कि शुभ्रा नाम की जिस लड़की से दीपू को प्रेम था, उसकी शादी हो जाने के बाद वह प्रेम व्यर्थ हो गया। मगर इस लड़की से उसका परिचय कब हुआ, यह उसे मालूम नहीं था। वह बोला, "दीपू अभी मिल जाता तो बड़ा अच्छा रहता।"

सपना ने कहा, "बुला लो न! दीपांजनबाबू के घर में फोन नहीं है क्या ?"

शांता ने जवाब दिया, "नहीं। लेकिन मैं ज्यादा रुक नहीं सकती। मुझे कालेज स्ट्रीट साढ़े पांच बजे तक पहुंचना ही है।"

अरूप ने मजाक किया, "इतनी जल्दी क्यों है ? क्या किसी के साथ समय तय कर रखा है ?"

शांता लज्जित न होकर साफ गले से बोली, "जी हां।"

"दीपू के साथ तो नहीं ?"

"जी हां, दीपूदा के ही साथ।"

"तब चलिए।"

कॉफी पीकर वे लोग चल पड़े।

प्रेसीडेंट कालेज के गेट के सामनेवाले पेड़ के नीचे ही प्रतीक्षा करने

की बात थी; लेकिन दीपू अभी तक नहीं आया था। बड़ी ही सावधानी और सलीके से अरूप ने फुटपाथ से सटाकर कार लगा दी और गरदन घुमाकर बोला, "देखा न आप बेकार जल्दी मचाती रहीं। मैं जानता था, दीपू कभी समय पर नहीं पहुंचता।"

सपना और शांता दोनों पीछेवाली सीट पर बैठी थीं। शांता बोली, "ठीक है, मैं उतरकर प्रतीक्षा करती हूं। आप लोगों को कोई और काम हो तो···"

सपना ने बात काटी, "जी नहीं, हम दोनों को कोई काम नहीं है।"

अरूप बोला, "मैं दीपू से मिलकर ही जाऊंगा। लेकिन निश्चित रहिए, आप दोनों के बीच ज्यादा देर तक बाधा नहीं बनूंगा।"

सपना ने कहा, "मेरी भी दीपांजन बाबू के साथ बहुत दिनों से मुलाकात नहीं हुई है।"

शांता न व्यग्र हुई, न इधर-उधर ताकने लगी। इस तरह की अस्थिरता उसमें नहीं है। आरामसे फुटपाथ पर खड़े होकर प्रतीक्षा करने लगी।

अरूप भी उतर गया और सपना भी। अरूप ने शांता से मजाक के लहजे में कहा, "दीपू आपके साथ समय तक करके क्या हर बार ऐसा ही करता है?"

"दीपूदा से मेरी ज्यादा मुलाकातें नहीं होतीं।"

सपना शांता को अवाक् देखे जा रही थी। बात उसकी समझ में नहीं आई। ज्यादा मुलाकातें नहीं हो पातीं, इसका क्या मतलब? शाम के समय ये दोनों अलग रहकर क्या करते हैं? अरूप हर दिन कब और कहां रहता है, यह तो सभी को पता है। दीपू से साढ़े पांच बजे मुलाकात होने की बात थी, लेकिन वह नहीं आया, फिर भी शांता कितनी शांत और अनुद्विग्न खड़ी है। अपने साथ ऐसा होने पर क्या वह इस तरह स्वाभाविक रह पाती? कभी नहीं?

तभी अरूप ने कहा, "सपना, आओ, पुरानी किताबें देखी जायं।" और वे किताबें देखने लगा।

•

दीपू एक जगह अटक गया था। एम्हर्स्ट स्ट्रीट से निकलकर सिटी कालेज के पास पहुंचा ही था कि पाड़ा के कई परिचित लड़कों ने उसे घेर लिया। वे सब उसके स्कूल के सहपाठी थे। धनंजय और सुकुमार तो कालेज में भी उसके साथ थे। कंधे पर भारी बोझ की तरह उन छह मित्रों को लिये हुए दीपू रास्ते के इस पार आ गया। अरूप और सपना पुरानी किताबें देखते हुए दूर निकल गये थे। उन्होंने दीपू को नहीं देखा। दीपू पास आकर शांता से बोला, "शांता, आओ; अपने मित्रों से परिचय करा दूं।"

शांता ने हाथ उठाकर नमस्कार किया।

दीपू ने कहा, "इस तरह कहीं परिचय होता है! चलो, कहीं थोड़ी देर बैठें। शांता, तुम्हारे पास पैसे तो होंगे ही?"

"हैं।"

सुकुमार बोल उठा, "नहीं, नहीं। आज रहने दो।"

धनंजय ने चलते हुए कहा, "हां, आज नहीं, फिर किसी दिन। आज हम लोग एक काम से जा रहे हैं। चलो, रवीन।" तेज कदमों से वे सभी दूसरी तरफ रास्ता पार करके चले गये।

तभी पीछे से अरूप ने आकर टोका, "क्यों दीपू?"

दीपू थोड़ा अवाक् होकर बोला, "अरे, तुम दोनों कहां से आ टपके?"

दीपू को पता नहीं था कि शांता का सपना से परिचय है। अरूप को भी उसने शांता के बारे में कभी नहीं बताया था। वह प्रश्नभरी दृष्टि से शांता की तरफ देखने लगा।

अरूप ने कहा, "तुम कैसे हो जी, तय करके भी समय पर नहीं पहुंचते? यदि हम दोनों न आते तो शांता अकेली कितनी देर खड़ी रहती?"

"मेरे साथ भेंट की बात न रहने पर भी क्या वह बस-ट्राम के लिए

देर तक खड़ी नहीं रहती है ?"

"वाह, दोनों बातें एक हैं क्या ?"

शांता थोड़ा हंसकर बोली, "कलकत्ता की बसों का क्या कहना ! दीपूदा से भी अधिक देर करके आती हैं ।"

दीपू ने सपना की ओर देखकर कहा, "अरे, सपना ? तुमको तो इस तरफ कभी देखा ही नहीं ।"

"हां, इस तरफ तो आना कभी होता ही नहीं ।"

अरूप ने पूछा, "तुम्हारे हाथ में यह क्या है ? देखूं तो ! अरे, इन सब किताबों को लेकर क्यों घूम रहे हो ?"

"इन्हें बेचूंगा ।"

सपना को यह सब बड़ा विचित्र लगा । भला कोई इस तरह अपने साथ बेचने के लिए किताबें लेकर आता है ? किताबें दुकानदार बेचते हैं, दूसरे लोग तो केवल खरीदते हैं । खरीदने के बाद किताबें घर पर ही रहती हैं, फिर पता नहीं, कैसे धीरे-धीरे खो जाती हैं !

अरूप ने पुस्तकें देखते हुए पूछा, "काम की इन किताबों को बेचोगे ? लास्की की यह किताब तो खोजने पर भी नहीं मिलेगी ।"

दीपू ने मुस्कराकर कहा, "मेरी किताबों की आलमारी टूट गई है ।"

"तो आलमारी बनवा लो । उसके लिए कोई इस तरह कीमती किताबों को बेचता है, क्या ?"

"कीमती किताबें ही तो बेची जाती हैं । सस्ती पुरानी किताबें कौन खरीदता है ? मेरे पिताजी घर बेचने जा रहे हैं, इसलिए मैं पहले ही चीजों को साफ किये दे रहा हूं ।"

"फिर भी किताबों को बेचने में कोई तुक समझ में नहीं आती ।"

दीपू थोड़ी देर हंसता रहा, फिर शांता की ओर एक नजर डालकर बोला, "केवल किताबें ही क्यों, पिताजी के पास एक जेबघड़ी थी—दादा के जमाने की, रोल्ड गोल्ड की। उसे हम लोगों से छिपाकर उन्होंने बेच दिया । उधर दीदी भी छिपे-छिपे चांदी की थाली-कटोरी बेचती रही हैं । इनकी

कोई जरूरत जो नहीं पड़ती आजकल। मैं भी पिताजी या दीदी को बिना बताये अपनी किताबें बेच रहा हूं। मेरे घर में इस तरह एक अजीब खेल खेला जा रहा है। बेचारे भैया! अकेले वे ही हैं, जो कुछ न कर सके।"

शांता चुपचाप सुनती रही, कुछ न बोली। उसके मन की बात का चेहरा देखकर पता नहीं चलता। लेकिन सपना के चेहरे पर उसके अंदर की तस्वीर साफ झलक जाती है। वह विस्मित ताके जा रही थी। दीपू ये सब बातें क्यों कह रहा है? उनका अपमान तो नहीं करना चाहता है?

अरूप को जेब से सिगरेट निकालते देखा तो दीपू बोल उठा, "मुझे भी दो एक। सारा दिन हो गया, एक सिगरेट भी नहीं पी सका।"

अरूप ने गंभीर होकर कहा, "सुनो दीपू, तुमसे कुछ खास बातें करनी हैं। सपना, तुम तबतक शांता से बातें करो।" फिर थोड़ी दूर हटकर अरूप ने रूमाल से अपना मुंह पोंछा और दीपू से कहा, "जानते हो, मैं आगामी सप्ताह से आफिस में बैठने लगूंगा।"

"सचमुच?"

"हां। तुम भी आओ। मेरा आफिस मिशन रो में है।"

"मैं?"

"मेरे कहते ही पिताजी राजी हो जायंगे। एक जगह खाली भी है। एक असिस्टेंट मैनेजर को कल हटाया गया है।"

"मुझे तुम नौकरी दे रहे हो? वाह! तनख्वा क्या दोगे?"

"पिताजी से पूछकर ही बता सकता हूं, फिर भी पांच सौ से कम तो किसी भी हालत में नहीं।"

"ऊंहु, इतने से नहीं बनेगा। तुम्हें जितना मिलेगा, मुझे भी उतना ही देना होगा। तुम बी० काम०, मैं भी बी० काम०। मैंने सी० ए० की भी पढ़ाई की है, यद्यपि परीक्षा नहीं दे सका। तुम मेरे ऊपर रहोगे, फिर भी मैं तुम्हें 'तुम' ही कहूंगा, बराबरी की तरह रहना चाहूंगा।"

अरूप थोड़ा असमंजस में पड़ गया। बोला, "मजाक की बात नहीं है, मैं दिल से कह रहा हूं।"

देर तक खड़ी नहीं रहती है ?"

"वाह, दोनों बातें एक हैं क्या ?"

शांता थोड़ा हंसकर बोली, "कलकत्ता की बसों का क्या कहना ! दीपूदा से भी अधिक देर करके आती हैं।"

दीपू ने सपना की ओर देखकर कहा, "अरे, सपना ? तुमको तो इस तरफ कभी देखा ही नहीं।"

"हां, इस तरफ तो आना कभी होता ही नहीं।"

अरूप ने पूछा, "तुम्हारे हाथ में यह क्या है ? देखूं तो ! अरे, इन सब किताबों को लेकर क्यों घूम रहे हो ?"

"इन्हें बेचूंगा।"

सपना को यह सब बड़ा विचित्र लगा। भला कोई इस तरह अपने साथ बेचने के लिए किताबें लेकर आता है ? किताबें दुकानदार बेचते हैं, दूसरे लोग तो केवल खरीदते हैं। खरीदने के बाद किताबें घर पर ही रहती हैं, फिर पता नहीं, कैसे धीरे-धीरे खो जाती हैं !

अरूप ने पुस्तकें देखते हुए पूछा, "काम की इन किताबों को बेचोगे ? लास्की की यह किताब तो खोजने पर भी नहीं मिलेगी।"

दीपू ने मुस्कराकर कहा, "मेरी किताबों की आलमारी टूट गई है।"

"तो आलमारी बनवा लो। उसके लिए कोई इस तरह कीमती किताबों को बेचता है, क्या ?"

"कीमती किताबें ही तो बेची जाती हैं। सस्ती पुरानी किताबें कौन खरीदता है ? मेरे पिताजी घर बेचने जा रहे हैं,इसलिए मैं पहले ही चीजों को साफ किये दे रहा हूं।"

"फिर भी किताबों को बेचने में कोई तुक समझ में नहीं आती।"

दीपू थोड़ी देर हंसता रहा, फिर शांता की ओर एक नजर डालकर बोला,"केवल किताबें ही क्यों,पिताजी के पास एक जेबघड़ी थी—दादा के जमाने की, रोल्ड गोल्ड की। उसे हम लोगों से छिपाकर उन्होंने बेच दिया। उधर दीदी भी छिपे-छिपे चांदी की थाली-कटोरी बेचती रही हैं। इनकी

कोई जरूरत जो नहीं पड़ती आजकल। मैं भी पिताजी या दीदी को बिना बताये अपनी किताबें बेच रहा हूं। मेरे घर में इस तरह एक अजीब खेल खेला जा रहा है। बेचारे भैया! अकेले वे ही हैं, जो कुछ न कर सके।"

शांता चुपचाप सुनती रही, कुछ न बोली। उसके मन की बात का चेहरा देखकर पता नहीं चलता। लेकिन सपना के चेहरे पर उसके अंदर की तस्वीर साफ झलक जाती है। वह विस्मित ताके जा रही थी। दीपू ये सब बातें क्यों कह रहा है? उनका अपमान तो नहीं करना चाहता है?

अरूप को जेब से सिगरेट निकालते देखा तो दीपू बोल उठा, "मुझे भी दो एक। सारा दिन हो गया, एक सिगरेट भी नहीं पी सका।"

अरूप ने गंभीर होकर कहा, "सुनो दीपू, तुमसे कुछ खास बातें करनी हैं। सपना, तुम तबतक शांता से बातें करो।" फिर थोड़ी दूर हटकर अरूप ने रूमाल से अपना मुंह पोंछा और दीपू से कहा, "जानते हो, मैं आगामी सप्ताह से आफिस में बैठने लगूंगा।"

"सचमुच?"

"हां। तुम भी आओ। मेरा आफिस मिशन रो में है।"

"मैं?"

"मेरे कहते ही पिताजी राजी हो जायंगे। एक जगह खाली भी है। एक असिस्टेंट मैनेजर को कल हटाया गया है।"

"मुझे तुम नौकरी दे रहे हो? वाह! तनख्वा क्या दोगे?"

"पिताजी से पूछकर ही बता सकता हूं, फिर भी पांच सौ से कम तो किसी भी हालत में नहीं।"

"ऊंहु, इतने से नहीं बनेगा। तुम्हें जितना मिलेगा, मुझे भी उतना ही देना होगा। तुम बी० काम०, मैं भी बी० काम०। मैंने सी० ए० की भी पढ़ाई की है, यद्यपि परीक्षा नहीं दे सका। तुम मेरे ऊपर रहोगे, फिर भी मैं तुम्हें 'तुम' ही कहूंगा, बराबरी की तरह रहना चाहूंगा।"

अरूप थोड़ा असमंजस में पड़ गया। बोला, "मजाक की बात नहीं है, मैं दिल से कह रहा हूं।"

"मैं भी मजाक नहीं कर रहा हूं।"

"ठीक है, तुम मुझे आफिस में 'तुम' ही कहना, कोई हर्ज नहीं।"

"और तनख्वा ?"

"कहा न, पिताजी से पूछे बिना कैसे कह सकता हूं ! मुझे कितना मिलेगा, अभी तो यही पता नहीं है।"

"इस प्रस्ताव के लिए धन्यवाद। लेकिन मुझे नौकरी की जरूरत नहीं है।"

"क्यों ?"

"एक आदमी को नौकरी से अलग कर उसकी जगह मालिक के लड़के के मित्र को नौकरी दी जाय, यह दूसरों को अच्छा नहीं लगेगा। वे हमेशा मुझे घृणा की दृष्टि से देखेंगे।"

"वाह, क्यों देखेंगे ? उसको किसी गलती के कारण ही नौकरी से हटाया गया है और तुमको केवल मेरा मित्र होने के नाते ही नहीं लिया जा रहा है। तुम इसके हकदार भी हो, पढ़े-लिखे हो। किसी-न-किसी आदमी को तो आखिर रखना ही होगा।"

"छोड़ो भी इन बातों को। मुझे नौकरी की जरूरत नहीं है, बस।"

"जरूरत क्यों नहीं है ?"

"यह ठीक से बता नहीं पाऊंगा। तुम मुझे पांच सौ रुपये की नौकरी दे रहे हो, यह सुनकर खुशी नहीं हुई। क्यों खुशी नहीं हुई, मुझे खुद भी पता नहीं। आज सब तरफ नौकरी का शोर है, मगर मैं इस भीड़ में अपने को कहीं नहीं पाता। मेरी ही उम्र के लाखों लोग बेकार बैठे हैं। कोई भी नौकरी मिलते ही सहर्ष स्वीकार कर लेंगे। कल लोग नौकरी और बेकारी भत्ते की मांग का जुलूस लेकर राइटर्स बिल्डिंग[1] जायंगे। मैं भी उसमें जाऊंगा, क्योंकि उनको सचमुच ही नौकरी की जरूरत है। किंतु मैं स्वयं अपने लिए कोई नौकरी नहीं चाहता।"

---

१ कलकत्ता में पश्चिम बंगाल सरकार का सचिवालय।

"फिर क्या करोगे ?"

"क्या करूंगा, यह बाद में सोचने की बात है। पहले मेरे घर की चीजें तो बिक जाने दो।"

"वाह, यह भी कोई जीवन है ?"

इसका क्या जवाब हो सकता था ! दीपू केवल मुस्कराकर रह गया।

अरूप को थोड़ी चोट जरूर पहुंची। जीवन के प्रति उसकी धारणा अगर किसी से मेल नहीं खाती तो उसे चोट पहुंचती है। वह चाहता है कि सबका जीवन और भी उज्ज्वल, समृद्ध, सुंदर और सफल हो। इसलिए यह उसकी समझ में नहीं आया कि कोई इस तरह अपने घर की चीजों को बरबाद भी कर सकता है और जिस लड़की को चाहता है, उसीके सामने निर्लज्ज होकर कह सकता है कि किताबें बेचने के लिए लाया है ! थोड़ी देर चुप रहकर अरूप बोला, "मैंने प्रोफेसर दासगुप्ता से तुम्हारे बारे में पूछा था। वे तो तुम्हारी प्रशंसा कर रहे थे।"

"नौकरी देने से पहले तुमने मेरे बारे में पूछताछ भी आरंभ कर दी ?"

"नहीं, ऐसे ही पूछा था। लेकिन दासगुप्ता ने तो उस बारे में कुछ भी नहीं कहा।"

"किस बारे में ? ओ हो, रुपये की चोरी के बारे में ? चोरी तो मैंने सचमुच की थी। प्रोफेसर दासगुप्ता ने इसलिए नहीं बताया होगा कि जो खुद चोर होता है, वह दूसरों की चोरी के बारे में कभी नहीं बताना चाहता। खैर, मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूं कि उसके बाद मैंने फिर कभी चोरी नहीं की।"

तभी सपना ने दूर से कहा, "आप लोगों की बातें खत्म नहीं हुई क्या ? खड़े-खड़े हमारे पैर थक गए।"

दीपू ने हाथ हिलाकर कहा, "आता हूं।" फिर अरूप से बोला, "तुम अब भी विश्वास नहीं कर पा रहे कि प्रोफेसर दासगुप्ता खुद भी चोर है ?"

अरूप ने बात टालते हुए पूछा, "खैर, तो तुम नौकरी नहीं करोगे ?"

"नहीं भाई, मुझे अच्छा नहीं लगता। मैं ऐसे ही ठीक हूं !"

अरूप सपना के साथ गाड़ी में बैठ गया और खिड़की से बाहर मुंह करके पूछा, "चाइबासा परमेश को चिट्ठी लिखी है ?"

दीपू बोला, "नहीं। तुम ही लिख दो। मुझसे चिट्ठी लिखी नहीं जाती।"

गाड़ी के चले जाने के बाद दीपू और शांता ने एक-दूसरे को गौर से देखा। इतनी देर खड़े रहने के बाद भी शांता के चेहरे पर नाममात्र की झुंझलाहट नहीं थी, बल्कि ताजगी और तेजस्विता झलक रही थी। थोड़ा हँसकर वह बोली, "मुझे अब एक घंटे के अंदर घर लौट जाना है।"

"लौट जाना है, तुम्हारा सिर ! मैं नौ बजे तक तुम्हें घर पहुंचा दूंगा, बस।"

"नहीं, इतनी देर नहीं रुक सकूंगी।"

"जरूर रुक सकोगी। जरा ठहरो, मैं इन किताबों को विदा करके अभी आया।"

"मेरे पास दस रुपये हैं।"

"केवल रुपयों के लिए इन्हें नहीं बेच रहा हूं। इन किताबों से पिंड छुड़ाना जरूरी है।"

दीपू चला गया और थोड़ी देर बाद किताबों से मुक्ति पाकर लौट आया। बोला, "चलो।"

८

मां जब जीवित थीं तो दूसरे तल्ले पर सीढ़ी से लगा हुआ कमरा पूजाघर था। वैसे इस परिवार में कोई परंपरागत गृह-देवता नहीं थे। घोर

जल्दी नहीं आती, इसलिए रोज रात में जागकर चिट्ठी का जवाब लिखने का प्रश्न नहीं उठता। तब भी दीदी देर रात तक पन्ने-पर-पन्ने लिखती रहती है।

निचला तल्ला पूरा किराये पर उठा दिया गया था। दो दुकानें और भीतरवाले कमरे में कागज का गोदाम था। शाम होते ही सारा घर सन्नाटे में डूब जाता। जबतक टुलटुल जागती रहती, उसके गले की आवाज सुनायी पड़ती। यों भी इस घर में बिना काम कोई किसी से नहीं बोलता।

मां की मृत्यु के बाद पिताजी में एक बड़ा परिवर्तन दीपू को दिखाई देने लगा था। उनकी नींद कम हो गई। पहले ग्यारह-साढ़े ग्यारह बजे तक सो जाते थे और एक ही नींद में सवेरा हो जाता था। अब वैसी नींद नहीं आती। दीपू ने प्रायः सुबह उठकर देखा कि पिताजी मुंह-हाथ धोकर चाय पी चुके हैं। बुढ़ापे में वैसे भी नींद कम आती है, और गहरी नींद तो कभी आती ही नहीं।

उस दिन रासमोहन की नींद भोर साढ़े चार बजे ही टूट गई थी। कुछ देर बिस्तरे पर करवट बदलते रहे और भुनसारा होते ही उठ गये। दरवाजा खोलकर बाहर आये। सीधे गुसलखाने में जाकर हाथ-मुंह धोया। फिर चाय पीने की इच्छा हुई। अभी पांच भी नहीं बजा था। महराजिन छः बजे आती थी। तबतक क्या करें? खिड़की से झांककर देखा, टुलटुल और अपर्णा दोनों गहरी नींद सो रही थीं। रासमोहन ने धीमी आवाज में पुकारा, "टुलटुलि, टुलटुलि।" सुबह की नींद में दोनों मां-बेटी मस्त सोई रहीं। दुबारा उन्होंने नहीं पुकारा। वे खिड़की के पास से हट आये। अभी कुछ करने को जी नहीं चाह रहा था। सड़क की ओर जो बरामदा पड़ता था, उसमें निकल आये और टहलने लगे। आज बड़ी जल्दी उठ गये। रसोईदारिन के न आने तक बाहर भी नहीं जा सकते। दरवाजा किसके भरोसे खुला छोड़ जायं।

टहलते हुए रासमोहन बरामदे के दूसरे छोर तक आ गये। फिर दूसरी बाजू जाकर दीपू के कमरे की ओर देखा। वह कमरे का दरवाजा

बन्द नहीं करता। उसका कमरा सड़क पर पड़ता था और पासवाला कमरा अभी खाली था। कोई चोर-वोर घुस जाय तो? लेकिन कहने पर भी वह सुनेगा नहीं। अब टहलना भी अच्छा नहीं लगता। वे सीढ़ी से नीचे उतरे, दरवाजा उड़काया और रास्ते पर निकल आये। चाय पीनी ही होगी अब तो।

रास्ता कुछ-कुछ चलना शुरू हुआ था। पानी से सड़क की धुलाई के शब्द कान में पड़ने लगे थे। सिटी कालेज की लड़कियां झुंड बनाये जा रही थीं। दूध की गुमटी के सामने लम्बी कतार लग गई थी। कालेज के [illegible] पार चाय की दुकान या मानिकतल्ला की ओर जलेबीवाली दु[illegible] किधर जायं, तय नहीं कर पाये।

एक पतली-सी गली के मुहाने पर दो आदमी खड़े थे। सर्दी [illegible] पड़ रही थी, फिर भी उनमें से एक ने शरीर पर हाथ करघे की [illegible] रखी थी। रासमोहन जैसे ही उनके पास से निकले, [illegible] आदमी ने पुकारा, "रासूदा!"

रासमोहन चौंककर रुक गये। उस आदमी को वहां [illegible] हुआ। अस्पष्ट आवाज में बोले, "निताई!"

दो बार स्वीकृतिसूचक स्वर में उसने कहा, "रासूदा [illegible]

पुकारने का ढंग ऐसा था मानो उसे रासमोहन से कुछ [illegible] करनी हो। लेकिन वह आगे नहीं बढ़ा, रासमोहन को ही [illegible] जाना होगा। उसकी उम्र लगभग चालीस के होगी। चेहरे में [illegible] बात नहीं थी, एकदम सामान्य, लेकिन आंखें दोनों छोटी-छोटी [illegible] हो रही थीं।

रासमोहन आगे नहीं बढ़े। इतने सवेरे रास्ते पर निकल [illegible] लिए मन-ही-मन अफसोस जरूर करने लगे। वह आदमी गली के [illegible] हटना नहीं चाहता था। उसने रासमोहन को अपने पास आने का [illegible] किया। उसका साथी थोड़ी दूरी पर वैसे ही खड़ा रहा।

रासमोहन ने पूछा, "तुम कब आये?"

"परसों।"

"क्यों आये ?"

"आना ही पड़ा। पैसा-कौड़ी एकदम नहीं है। रासूदा, मुझे कुछ रुपयों की जरूरत है।"

"रुपया ? मेरा हाथ विलकुल तंग है।"

उसने मानो रासमोहन की वात सुनी ही नहीं, अपनी ही कहता चला गया, "मैं शशांक के यहां ठहरा हूं। आपसे मिलने के लिए आ ही रहा था। मुझे दो सौ रुपयों की सख्त जरूरत है। आज ही मिलने चाहिए।"

"दो सौ रुपये मैं कहां से दूंगा ?"

"शाम को कितने वजे आऊं ? एक-एक रुपये के नोट होने में अच्छा रहेगा। मैं आपके घर आऊं या आप ही किसी जगह..."

"निताई, कह रहा हूं, मेरे पास अभी रुपये नहीं हैं।"

चादर ओढ़े हुए निताई नाम का वह आदमी रासमोहन की ओर एकटक ताकता रहा, फिर हंसकर बोला, "रासूदा, इतने दिन वाद कलकत्ता आया हूं और आप मुझे वहका रहे हैं ?"

"तुम्हें यहां आने के लिए किसने कहा ?"

"जिंदा रहने के लिए खाना-पीना तो पड़ेगा ही। पास में पैसा विलकुल नहीं है। आज शाम ही मुझे दो सौ रुपये चाहिए।"

रासमोहन का चेहरा जर्द हो गया। एकटक निताई की ओर ताकने लगे। निताई के गालों पर पांच-छह दिनों की दाढ़ी जमी थी। छोटी-छोटी आंखें, जागने के कारण, वीमार की तरह लाल हो गई थीं। वह किसी तरह की जल्दी में नहीं दिखाई देता था। चुपचाप दीवार का सहारा लिये खड़ा था। वीच-वीच में केवल रास्ते के दोनों तरफ देख लेता था।

रासमोहन वोले, "निताई, तुम्हारा इस तरह घूमना-फिरना अच्छा नहीं है। अंत में क्या सवको..."

"मुझसे और सहा नहीं जाता, रासूदा। इतने दिनों इस तरह छिपकर कैसे रहा जा सकता है ! मैं जीवन को वदलना चाहता हूं।"

"अभी नहीं। एक वर्ष और बीतने दो।"

"एक वर्ष तक मैं करूंगा क्या ?"

"तुम बिहार की तरफ कोई छोटी-मोटी नौकरी क्यों नहीं कर लेते ? वहीं अपने परिवार को भी रख सकते हो।"

"मुझे नौकरी कौन देगा ? फिर कोई काम भी तो नहीं जानता। क्या कुलीगिरी करूंगा ? अच्छा होना चाहता हूं, इसका मतलब यह तो नहीं है कि भूखों मरूं।"

"दुकान खोल सकते हो। छोटा-मोटा होटल।"

"खर्च कौन देगा? आप ? पांच हजार रुपये दीजिये, फिर मैं कभी कलकत्ते नहीं आऊंगा।"

"मेरे पास रुपये कहां हैं ! हाथ एकदम खाली हो गया। जितने दिन जिन्दा हूं, किसी तरह चल जाय, यही बहुत है।"

"आप चाहें तो दो-पांच हजार रुपये देना बड़ी बात नहीं।"

"अभी भी यही सोचते हो ? तुम लोगों के ही कारण तो सर्वस्व स्वाहा हो गया। कई एक लाख के चक्कर में आ गया।"

"मेरे कारण ?"

"और नहीं तो क्या ?"

"देखिये रासूदा, आप दुधमुंहे बच्चे तो थे नहीं, जो मेरी बातों में आ गये !"

रासमोहन जल्दी से हाथ उठाकर बोले, "रहने दो ! जो होना था, हो गया। अब गड़े मुर्दे उखाड़ने से क्या फायदा ? मैं तुम्हारे भले के ही लिए कह रहा हूं कि यहां तुम्हारा ज्यादा घूमना-फिरना ठीक नहीं।"

"तो मुझे दो सौ रुपये कब दे रहे हैं ?"

रासमोहन झुंझला उठे, "रुपये-वुपये कुछ नहीं मिलेंगे। परेशान मत करो, जाओ।"

"रासूदा, मैं..."

"तुम्हें जो सूझे, करो। मैं और रुपये नहीं दे सकूंगा। [illegible]

तुम्हारे साथ···उफ् !"

"दो सौ रुपये मुझे चाहिए...जहां से भी हो।"

रासमोहन थोड़ा आगे झुककर जोर से बोले, "कह तो दिया कि नहीं दूंगा। जो खुशी हो, करो। चाहे अभी यहीं खड़े-खड़े जोर से चिल्लाकर सबको बता दो।" और रासमोहन तेजी से घूमकर चल दिये। निताई ने उनको रोकने की चेष्टा नहीं की। दूर खड़े साथी ने थोड़ा आगे आकर निताई की तरफ देखा। लेकिन निताई केवल रासमोहन को जाते हुए देखता रहा। मानो निताई की उस निगाह में चुम्बक हो, कुछ दूर जाकर रासमोहन उतनी ही तेजी से लौट आये। बोले, "रुपये मिलते ही यहां से चले जाओगे न ?"

"सोच तो रहा हूं।"

"दो सौ रुपये दे सकूंगा या नहीं, कह नहीं सकता। जितना भी होगा, कल सुबह दे जाऊंगा। खबरदार, मेरे घर मत आना !"

"तो कल सुबह यहीं आयंगे ?"

"आऊंगा। कल नहीं जुटा सका तो परसों आऊंगा। लेकिन कहे देता हूं, मेरे घर मत आना, नहीं तो अच्छा नहीं होगा।"

"रासूदा, आप नाहक गुस्सा हो रहे हैं। सचमुच मुझे रुपयों की सख्त जरूरत है। दूसरी जगह से अगर जुटा पाता तो आपको तंग नहीं करता।"

"ठीक है, ठीक है। समझ रहा हूं कि जबतक जिंदा रहूंगा, तुम्हारे चंगुल से छूट नहीं पाऊंगा। ऐसे ही जल-जलकर मरना होगा।"

रासमोहन बड़बड़ाते हुए रास्ते पर आगे बढ़ गए। दोनों भौंहें तनी हुई थीं। आंखों में, चेहरे पर, विषाद की छाया उतर आई थी। भोर में जितना अच्छा लग रहा था, अब उसका लेश भी नहीं रह गया था। अब तो जिधर भी देखते, झल्लाहट छूटती और बड़े जोर का गुस्सा आने लगता।

९

श्याम पार्क के पास, शांता के घर के समीप, दीदी की ससुराल थी। महीने में एक बार दीपू ही टुलटुल को लेकर वहां जाता था। यह जैसे उसी का दायित्व हो। अपर्णा इन पांच वर्षों में एक बार भी ससुराल नहीं गई। बड़ी अभिमानिनी थी वह। टुलटुल के पैदा होने के बाद कुछ महीने ससुर के घर रही; लेकिन एक बार किसी ने उसकी तरफ इशारा करके कह दिया, रनेन स्वदेश नहीं लौट रहे, जर्मनी में ही मेम से शादी कर ली है। कहनेवाले ने इस तरह कहा, मानों अपर्णा का दोष हो! सुनकर अपर्णा पिता के घर आ गई, फिर ससुराल नहीं गई।

रासमोहन अपनी लड़की को घर में रखना नहीं चाहते। जमाई नहीं हैं, तो अकेली उस घर में रहकर क्या करेगी? काफी देख-सुनकर एवं ढेर सारा खर्च करके शादी की थी। रनेन वैसे काफी अच्छा लड़का था, उसका घर भी बागबाजार के प्रसिद्ध परिवारों में गिना जाता था, स्थिति भी ठीक ही थी; लेकिन विदेश जाकर ऐसी दुर्बुद्धि उपजेगी, इसे कौन जानता था!

दोनों घरों में मनमुटाव हो गया था। पिछले तीन वर्षों में पूजा के समय अपर्णा को श्वसुर के घर से एक साड़ी भी नहीं मिली थी, यद्यपि वह उस घर की बड़ी बहू थी। एकमात्र टुलटुल ही अब इन दोनों परिवारों के बीच सेतु बनी हुई थी। कुछ दिन पहले अपर्णा के श्वसुर ने रासमोहन के सामने एक विचित्र प्रस्ताव रखा था: वे टुलटुल को अपने पास रखना चाहते थे। टुलटुल उनके घर की पोती है, रनेन की मां हर समय पोती को याद करती रहती हैं, उसे हर समय देखना और आंखों के सामने रखना चाहती हैं। बहू के प्रति कोई आकर्षण नहीं रह गया था, पोती को लेकर खींचातानी करना चाहते थे। उस समय अपर्णा ने आकर जब श्वसुर को प्रणाम किया था, तो उनके मुंह से आशीर्वाद का एक शब्द भी नहीं

निकला था।

रासमोहन इस विचित्र प्रस्ताव को सुनकर आगबबूला हो गए थे। मां को छोड़कर टुलटुल अकेली उस घर में कैसे रहेगी, जबकि वहां किसी कोपहचानती तक नहीं। नहीं, उनकी बेटी और नातिनी दोनों यहीं रहेंगी, उन्हींके घर, उनके पास। जितने रासमोहन जिद्दी थे, अपर्णा के श्वसुर भी उतने ही जिद्दी थे। अगर टुलटुल लड़की न होकर लड़का होती तो मामला अंत में जरूर अदालत तक पहुंचता। रनेन के पिता अपने वंशधर पर अपना अधिकार कभी न छोड़ते। लेकिन लड़की तो वंशधर होती नहीं। अंत में यह तय हुआ कि बीच-बीच में टुलटुल को दादा-दादी के पास ले जाने की व्यवस्था कर दी जाय। अतएव दादी पोती को आशीर्वाद देती रह सकें, इसका प्रबंध कर दिया गया।

लेकिन एक दीपू को छोड़कर और कौन था, जो इस काम को करता? वैसे दीपू को यह काम बिलकुल अच्छा न लगता। उस घर में उससे कोई ठीक से बात भी नहीं करता। जबतक वहां रुकना पड़ता, उसे बहुत बुरा लगता। टुलटुल को भी वहां जाना अच्छा न लगता। जिस समय वह मां के गर्भ में थी, रनेन तभी विदेश चले गये थे। पिता को उसने एक बार भी नहीं देखा था। दादी के लिए मन में आदर अथवा आकर्षण आता कहां से? दादी यानी रनेन की मां स्नेह से उच्छ्वसित होकर पोती को छाती से लगा लेतीं और टुलटुल झटपट उनके स्नेहपाश से मुक्त होकर भाग आना चाहती। अपर्णा बार-बार दीपू से अनुनय करती कि उस घर जाकर एक मिनट के लिए भी वह टुलटुल को अपनी आंखों की ओट न होने दे।

टुलटुल ने आज रेशम का एक सादा फ्रॉक पहना था। उसका भोला, यारा चेहरा प्रसन्नता से खिल रहा था। दीपू के साथ बाहर जाना उसे ाड़ा अच्छा लगता था। मां के साथ निकलने पर, बहुत सावधानी से चलने ; लिए प्रायः डाट-फटकार सुननी पड़ती। मां उसका हाथ भी नहीं छोडती

थी, और नाना के साथ जाने पर, वीच-वीच में रुककर, वे लोगों के साथ वातें करने लग जाते और उतनी देर उसे चुपचाप खड़ा रहना पड़ता, जो जरा भी अच्छा नहीं लगता था। लेकिन दीपू मामा हाथ छोड़कर मन-मुताबिक चलने-दौड़ने देते थे। मां कभी भी वस में दो-तल्ले पर नहीं जाने देती। दीपू मामा हमेशा दोतल्ले पर ही विठाते। मांगने पर आलू, कावुली चना या कोका-कोला भी दिला देते थे।

श्याम वाजार तक वस से आकर, सेंट्रल एवेन्यू के चौड़े फुटपाथ पर टुलटुल के साथ दीपू चलने लगा। टुलटुल अपने आप चलते हुए कभी दौड़-कर आगे भी निकल जाती। दीपू इधर-उधर ताकता रहता। रास्ते चलते लोगों के चेहरों को भी ध्यान से देख लेता। इस मुहल्ले में आते ही वह थोड़ा परिवर्तन करने लगता। कलकत्ते के दूसरे मुहल्लों से यह मुहल्ला उसे काफी वदला हुआ नजर आता; क्योंकि इसी जगह तो शांता रहती थी। वह मकान जितना करीव होता गया, टुलटुल की चंचलता उतनी ही कम होती गई। दीपू का हाथ उसने खुद ही आकर पकड़ लिया। दीपू ने उसका हाथ थोड़ा दवाते हुए कहा, "सुनो, आज हम दोनों ज्यादा देर तक नहीं ठहरेंगे, समझीं? दस मिनट रुककर निकल पड़ेंगे।"

"कैसे समझूंगी कि दस मिनट हो गये? तुम तो घड़ी भी नहीं पहने हो।"

"उनके घर में दोतल्ले पर एक वड़ी घड़ी है न?"

"वह तो खराव है।"

"तो अंदाज से दस मिनट होते ही मैं तुम्हें इशारा करूंगा। तुम घर चलने के लिए जिद्द करने लगना। फिर मैं सब ठीक कर लूंगा।"

दोतल्लेवाली वड़ी घड़ी अवतक खराव पड़ी थी। ठीक पिछले महीने की तरह ही पौने तीन वजकर दोनों कांटे प्रायः सीधी रेखा में खड़े थे, एकतल्ले में कोई नहीं था। टुलटुल को लिये वह सीधा दोतल्ले पर चढ़ आया था। इस घर के सभी लोगों को वह पहचानता था। रनेनदा जव यहां थे, वह इस घर में प्रायः आता रहता था। आज भी दीपू को रनेनदा

पर गुस्सा नहीं आता, क्योंकि दीदी के साथ रनेन दा की शादी न होती तो शांता से उसका परिचय कैसे होता !

कमरे के बीचोंबीच रनेनदा का एक बड़ा-सा चित्र टंगा था और उसके ऊपर एक माला पहनाई हुई थी। टुलटुल को प्रणाम कराने के लिए ले गई रनेन की मां। चित्र की तरफ देखकर दीपू को हंसी आ गई। मरे हुए आदमी के चित्र को माला पहनाई जाती है। रनेनदा क्या मर गये ? इस घर में बड़ी विचित्र बातें होती हैं। हैम्बुर्ग के किसी मुहल्ले में एक मेम के साथ रनेनदा रहने लगे हैं। उनको लेकर इतनी चिंता करने का प्रश्न ही नहीं उठता, मगर अचरज की बात है कि उनके जन्मदिन पर कलकत्ता में उनके चित्र को माला पहनायी गई, उनके नाम पर खीर, मां की आंखों से आंसू बहे और अब उनकी बेटी, जिसने कभी रनेनदा का मुंह भी नहीं देखा, हतबुद्धि होकर उनके चित्र को प्रणाम कर रही थी !

टुलटुल को ऊपर ले जाया गया। दीपू उसे रोकने की चेष्टा में था, मगर रोक न सका। दीपू की तरफ देखते-देखते, न चाहते हुए भी, टुलटुल को ऊपर जाना पड़ा। वह दादा-परदादा के समय की एक विशाल बदरंग आराम-कुर्सी पर बैठा रहा। थोड़ी देर बाद तश्तरी में नौकर के हाथ चार मिठाइयां उसके लिए भेज दी जायंगी और एक प्याला चाय भी। दीपू खाये या न खाये, मगर यह सब भेजा जायगा जरूर, क्योंकि यही इस घर का दस्तूर है। हां, खाने के लिए अनुरोध करनेवाला कभी कोई सामने नहीं आयगा।

उस दिन मिठाई की तश्तरी के थोड़ी देर बाद ही रनेनदा का चचेरा भाई नीचे उतर आया—इस घर के और लोगों के ही अनुरूप एकदम गोरा, लंबा और चौड़ा। कम उम्र में ही सर के बाल झड़ने लगे थे। दीनेन वैसे बड़ा चालाक और एकदम चालू किस्म का आदमी था, मगर अपने गंजेपन को छिपाने के लिए जिस तरह बाल झाड़ता, उससे उसकी इस दुर्बलता और बेवकूफी पर हंसी आती थी। पासवाली कुर्सी पर बैठकर वह बोला, "क्यों दीपू, क्या खबर है ? आज आफिस नहीं जाओगे ?"

दीनेन के साथ जब भी मुलाकात होती, वह हर बार यही पूछता। हालांकि वह खूब जानता था कि दीपू कोई नौकरी नहीं करता। दीनेन खुद भी नौकरी नहीं करता, अपने तीनों मकानों का किराया वसूल करना ही उसका प्रधान कार्य है।

दीपू ने जवाब दिया, "नहीं, आज नहीं जाऊंगा।"

"छुट्टी ली है?"

"नहीं, जाऊंगा नहीं, बस।"

"खैर, लो, मिठाई खाओ।"

"नहीं, मैं मिठाई-विठाई नहीं खाता।"

"तो फिर चाय पी लो।"

"मैं इस समय चाय भी नहीं पीता।"

"चाय मैं भी ज्यादा नहीं पीता। सिगरेट लोगे?"

"चलेगी।"

"चलो, नीचे चलकर बैठें। यहां चाची आ जायंगी।"

दीनेन के साथ दीपू नीचे चला आया। एक सिगरेट जलायी। खूब मजे में सिगरेट का धुंआ छोड़ते हुए दीनेन ने पूछा, "तुम्हारी दीदी कैसी हैं?"

इस मकान में केवल दीनेन ही दीदी की खबर पूछता है। लेकिन दीपू के सामने वह कभी भी अपर्णा को भाभी कहकर संबोधित नहीं करता।

"ठीक ही हैं।"

"बड़े भैया की चिट्ठी पिछले सप्ताह मिली थी, उसमें तुम्हारी दीदी के बारे में भी पूछा था।"

दीपू को समझते देर नहीं लगी कि दीनेन झूठ बोल रहा है। ऐसा झूठ वह प्रायः बोलता है। रनेनदा किसी को चिट्ठी न लिखकर दीनेन को लिखें, यह हो नहीं सकता। दीनेन के यह कहने का जरूर कोई कारण होना चाहिए। किस बात की भूमिका हो सकती है यह, दीपू की समझ में नहीं आया। तटस्थ ढंग से उसने कहा, "सचमुच? देखूं रनेनदा की चिट्ठी!"

"कहीं रख दी है, अभी शायद ही मिले। अच्छा, तुम्हारी दीदी क्या फिर शादी कर रही हैं ?"

"क्या मतलब ?"

"इसी तरह की खबर सुनने को मिली है।"

दीपू का चेहरा लाल हो गया। मारे गुस्से के वह कांपने लगा। थोड़ी देर बाद किसी तरह बोला, "लेकिन मैंने तो इस बारे में कुछ नहीं सुना, तुमने कहां से सुन लिया ?"

"मैंने पक्के सूत्र से सुना है।"

दीपू ने लगभग चिल्लाकर कहा, "यदि करती है तो ठीक करती है। करना उचित भी है।"

दीनेन को इसमें मजा आ रहा था। वह दीपू के उत्तेजित, अपमानित आरक्त मुंह की ओर देखकर धीमे-धीमे मुस्कराने लगा। कुछ लोग ऐसे भी होते हैं, जिन्हें दूसरे को अपमानित होते देखकर मजा आता है। दीपू को आया देखकर दीनेन शायद इसीलिए ऊपर से नीचे उतरा था। दीपू इस तरह की बात सुनने के लिए तैयार नहीं था, इसीलिए अपने अपमान-बोध को वह छिपा नहीं पा रहा था। घर के बारे में उसे ज्यादा कुछ पता भी नहीं था, अधिकतर समय उसका बाहर ही बीतता था, दीदी से मुला-कात होती ही कितनी देर थी !

वैसे अपर्णा दीदी बहुत ही चुप रहती, अपने बारे में कभी कुछ नहीं बोलती। विदेश जाकर रनेनदा ने जबसे चिट्ठी लिखना बंद किया, वह और भी चुप रहने लगी थी। शादी के बाद केवल दो वर्ष ही दांपत्य जीवन बिता सकी थी। उस समय इन दोनों को देखकर लगता था कि दुनिया में सबसे सुखी दम्पति यही हैं। वास्तव में रनेनदा के चले जाने का उतना दुःख दीदी को नहीं था, जितना कि अपमानित होने का। इसलिए इस बात को लेकर दीदी ने कभी रोया-धोया नहीं, न किसी के सामने कुछ कहा। बस एकदम चुप हो गई। टुलटुल को बड़ा करना ही उसका एकमात्र उद्देश्य रह

गया । दीपू ने दीदी को जब भी देखा, वह या तो टुलटुल को पढ़ा रही होती या खिला-पिला रही होती । रोज टुलटुल को स्कूल ले जाती । एक क्षण के लिए भी टुलटुल को अपने से अलग नहीं करती थी ।

एक दिन काफी रात गये, सीढ़ी चढ़ते समय दीपू ने देखा कि टुलटुल के साथ बिस्तर पर लेटे-लेटे दीदी एक कापी में कुछ लिख रही थी । दीपू को लगा, दीदी ने शायद फिर से छिपकर कहानी-कविता लिखना शुरू कर दिया है । किसी समय दीदी लिखा करती थी । बेथुन कॉलेज की पत्रिका में उसकी एक कविता छपी थी 'आकाश का सीमांत ।' उसी कविता की एक-एक पंक्ति पढ़कर रनेनदा ने इतना मजाक किया था कि दीदी ने लिखना ही छोड़ दिया ।

लेकिन इस बीच यह बात कैसे पैदा हो गई कि दीदी फिर शादी करेगी ? दीनेन ने बहुतही जोर देकर कहा, जब कि दीपूको उस बारे में कुछ पता ही नहीं, वैसे दीदी अगर फिर शादी करना चाहे तो दीपू विरोध नहीं, बल्कि समर्थन ही करेगा । पति आठ-नौ वर्ष से विदेश में हो, वहां दूसरी औरत के साथ मौज करता रहे, एक चिट्ठी भी कभी नही लिखे, पता नहीं किसी दिन लौटेंगे भी या नहीं, तो क्यादीदी अपना जीवन ही नष्ट कर दे ? नहीं उसे भी दूसरे पुरुष को चाहने का अधिकार है, नया जीवन शुरू करने का अधिकार है । अभी अपर्णा की उम्र ही क्या है ? सिर्फ उन्तीस वर्ष । उसके सामने सारी जिन्दगी पड़ी है । फिर भी दीनेन की इस बात को वह स्वाभाविक रूप से ग्रहण नहीं कर पाया । अंदर-ही-अंदर अपमानित महसूस करने लगा ।

दीनेन बोला, "तुम्हारे ही मुहल्ले में अनुभा चक्रवर्ती रहती हैं, कल्याणी विद्यामंदिर की हेड-मिस्ट्रेस । तुम्हारी दीदी प्रायः उनके पास जाती है और उनके स्कूल में नौकरी पाने की कोशिश कर रही है ।"

"बेकार की बात है । दीदी नौकरी नहीं करेगी ।"

"मुझे भी यही लगता है । तुम्हारी दीदी को नौकरी करने जरूरत नहीं है । तब भी यह सही है कि वह नौकरी के लिए कोशि

रही है। अनुभा चक्रवर्ती के चचेरे भाई अनिमेष चक्रवर्ती से तुम्हारी दीदी की मेल-मुलाकात है। अनिमेष चक्रवर्ती का नाम तो सुना ही होगा ?"

"नहीं सुना। कौन है ?"

"रवींद्र भारती या किसी कॉलेज में लेक्चरर है।"

"दीदी के साथ उसका परिचय होने से क्या होता है ?"

"यह परिचय काफी दूर तक पहुंच गया है। तुम्हारी दीदी के साथ हो सकता है, अबतक रजिस्ट्री हो भी गई हो, अथवा शीघ्र हो जाय, यद्यपि कानून की दृष्टि में ऐसा होना संभव नहीं।

दीपू असमंजस में पड़ गया। जाने क्यों, उसे लगा कि दीनेन एकदम झूठ नहीं बोल रहा, उसकी बातों में कुछ सचाई अवश्य है। पूछा, "तुमको यह सब कैसे पता चला ?"

दीनेन हंसा। बोला, "अनिमेष चक्रवर्ती को मैं बहुत दिनों से जानता हूं। मुझसे उसने स्वयं कहा है। वह मेरे ममेरे भाई का मित्र है और मामा के घर बराबर आता रहता है। तुम्हारी दीदी के साथ हम लोगों का क्या संबंध है, यह भी वह जानता है। फिर भी बड़े गर्व से बता रहा था कि तुम्हारी दीदी के साथ वह आउट्राम घाट घूमने गया था।"

कितनी महिलाएं कितने पुरुषों के साथ आउट्राम घाट घूमने जाती हैं, हुगली नदी के किनारे खड़े होकर कितनी बातें होती हैं—इसमें कुछ असुंदर,कुछ अनुचित, नहीं है। लेकिन उसकी दीदी किसी अनिमेष चक्रवर्ती के साथ वहां गई थी, यह मानो एक पाप हो गया ! भयंकर अपराध ! हर समय दु:ख से कातर रहना तथा टुलटुल को बड़ा करना, इसके अलावा दीदी की और कोई भूमिका नहीं हो सकती ? उसने पुनः जोर देकर कहा, "गई, अच्छा ही किया। लेकिन यह सब तुम मुझसे क्यों कह रहे हो ?"

दीनेन ने जवाब दिया तो उसका स्वर कातर हो आया। बोला, "तुम गुस्सा कर रहे हो, दीपू, गुस्सा तो होगा ही। लेकिन इस बारे में थोड़ा-सा सोचकर भी देखो। मेरा भाई अभी मरा नहीं है और न तुम्हारी दीदी से उसका तलाक ही हुआ है। अतः नियम के अनुसार वह अभी भी इस घर

की वहू और मेरी भाभी है। उनके बारे में अगर बाहर गलत बातें सुनने को मिलें तो हम लोगों को कैसा लगेगा? यह तो हम लोगों की बात हुई। तुम्हारी दीदी के हक में कहूं तो अनिमेष चक्रवर्ती आवारा किस्म का आदमी है। इसके पहले भी वह ऐसा ही कुछ कर चुका है! जरा सोचकर देखो, जो औरत अभी नियम के अनुसार दूसरे की पत्नी है, उसके साथ यह सब, यानी शादी करने के बात…छिः-छिः!"

दीनेन की इस बात का दीपू के पास कोई जवाब नहीं था, मगर वह चुप भी न रह सका। एकदम तनकर बैठ गया और तेज आवाज में बोला, "इतनी देर से बड़ा नियम-कानून बघार रहे हो! लेकिन बताओ, रनेनदा ने ही विदेश जाकर शादी कैसे कर ली? यह क्या कानून के अंदर है?"

"भैया ने दुबारा शादी की, इसका कोई प्रमाण नहीं है।"

"प्रमाण कैसे नहीं है! मेरे मौसा खुद जर्मनी जाकर अपनी आंखों से देख आये हैं। ठीक है, मैं भी रनेनदा को पत्र लिखता हूं कि यदि दो महीने के अंदर तलाक की व्यवस्था नहीं की तो मैं देख लूंगा।"

"भैया का पता कहां मिलेगा? पिछले एक वर्ष से उन्होंने किसी को चिट्ठी नहीं लिखी है। पहले वाले पते पर अब शायद नहीं रहते।"

जिसे झूठ बोलते लज्जा नहीं आती, उससे यह कहने की दीपू की इच्छा नहीं हुई कि थोड़ी-ही देर पहले तुम कह चुके हो कि दो-तीन दिन हुए, रनेनदा की चिट्ठी आई है। उसने दीनेन की आंखों में देखते हुए यही कहा, "पता खोज लेना मुश्किल नहीं है। तुमने क्या सोच रखा है कि विदेश में हमारे जान-पहचान का कोई नहीं रहता? जरूरत पड़ने पर मैं जर्मन दूतावास को लिखूंगा, रनेनदा जिस कंपनी में काम करते हैं, उसके हेड आफिस को लिखूंगा। उस देश में एक पत्नी के रहते दूसरी शादी करना कितना बड़ा अपराध है, यह शायद तुम नहीं जानते! इसके लिए उनकी नौकरी ही नहीं छूट सकती, उस देश से उन्हें निकाला भी जा सकता है।"

दीनेन ने दीपू की इन बातों को कोई महत्त्व नहीं दिया। भारी आवाज

में बोला, "तुम्हारी दीदी अगर दुबारा शादी करना चाहती है तो हम लोग अदालत में जाकर तमाशे का रूप नहीं देंगे। केवल इतना चाहेंगे कि इस घर से अपने संबंध के बारे ने लोगों को न बतावें, और टुलटुल को हम अपने साथ रखेंगे। चाची को अभी इस बारे में कुछ मालूम नहीं है।"

दीपू उठकर खड़ा हो गया। बोला, "टुलटुल कहां है? बुलाओ उसको।" दस मिनट के बदले आध घंटा गुजर गया था। दीपू को लगा, जैसे आज से ही ये लोग टुलटुल को रोक रखना चाहते हैं। उत्तेजित स्वर में बोला, "बुलाओ टुलटुल को अभी!"

"जल्दी क्यों मचा रहे हो? आ जायगी। यहां आकर उसको बहुत अच्छा लगता है, वह वापस जाना ही नहीं चाहती।"

"बिल्कुल झूठ है। टुलटुल इस घर में आना नहीं चाहती। उसको जबदस्ती लाना पड़ता है। मेरी भी यहां आने की इच्छा नहीं होती।"

"इस घर में न हो, लेकिन इस मुहल्ले में कई बार तुमको देखा है।"

दीनेन की इस बात को अनसुना कर वह दरवाजे की ओर बढ़ गया। जैसे भी हो, टुलटुल को यहां से निकाल कर ले जाना होगा। अगर जरूरत पड़ी तो वह इसके लिए इस घर को तहस-नहस भी कर देगा। टुलटुल को रोककर रखेंगे ये लोग! इनकी इतनी मजाल?

वह जोर से चिल्लाकर बुलाने ही जा रहा था कि देखा, रनेन की मां खुद टुलटुल के साथ सीढ़ी उतर रही हैं। दीपू को देखकर वह लगभग भागती हुई उसके पास नीचे गईं। उसका हाथ पकड़कर दीपू बोला, "बहुत देर हो गई है, चलो।"

बाहर निकल कर दोनों कुछ देर चुपचाप चलते रहे। दीनेन को उसने खूब आड़े हाथ लिया था। लेकिन उसे कोई खुशी नहीं हो रही थी। कुछ देर बाद सूखे गले से वह बोला, "तुमको कहा था न कि दस मिनट में चली आना।"

"टुलटुल ने डरकर उत्तर दिया, "क्या करती? मुझको वे तीन तल्ले पर ले गये थे।"

दीपू ने उसके माथे पर हाथ फेरते हुए कहा, "तुम्हें एक और जगह ले चलता हूं।"

१०

टुलटुल का हाथ थामे दीपू ने रास्ता साफ किया। बड़े रास्ते से होकर थोड़ा गली में जाने पर बीच में शांता का घर पड़ता है। जैसे ही वे दरवाजे के पास पहुंचे, उसको लगा कि शांता इस समय घर में नहीं है। उसको यह कैसे पता चल जाता है, खुद भी नहीं जानता। दरवाजा सामने से थोड़ा खुला हुआ था। यह जानते हुए भी कि शांता इस समय घर में नहीं है, यहां तक आकर वह योंही नहीं लौट सकता। थोड़ा अन्यमनस्क होकर उसने टुलटुल से कहा, "चलो, यह एक मौसी का घर है। तुमको अच्छा लगेगा।"

दोतल्ले पर पहुंचते ही शांता की छोटी बहन रिनी से मुलाकात हो गई। वह यह कहते हुए खुशी से ऊपर भागी, "अरे, दीपूदा! यह कौन है? आपके भैया की लड़की है क्या? मां, दीपूदा आये हैं।"

"भैया की नहीं, मेरी दीदी की लड़की है।"

"कितनी प्यारी है!"

"रिनी, आज तुम्हारा स्कूल नहीं है?"

"नहीं, आज हम लोगों को छुट्टी है।"

तीन तल्ले से शांता की दीदी सुरभि भी उतर आयी। शादी के तीन-चार वर्ष बाद ही चेहरा भर गया। उसके चेहरे के भाव भी हर समय भारी-भरकम लगते हैं। हंसी भी भरी-पूरी, मानो इस पृथ्वी पर जो कुछ प्राप्य था, वह उसे मिल गया। भरपूर हंसी हंसकर बोली, "दीपू, कैसे हो? बहुत दिनों से देखा ही नहीं तुमको। यह रत्नेनदा की बेटी है न? ओह,

ं बोला, "तुम्हारी दीदी अगर दुवारा शादी करना चाहती है तो हम लोग अदालत में जाकर तमाशे का रूप नहीं देंगे। केवल इतना चाहेंगे कि इस घर से अपने संवंध के वारे ने लोगों को न वतावें, और टुलटुल को हम अपने साथ रखेंगे। चाची को अभी इस वारे में कुछ मालूम नहीं है।"

दीपू उठकर खड़ा हो गया। बोला, "टुलटुल कहां है? बुलाओ उसको।" दस मिनट के वदले आध घंटा गुजर गया था। दीपू को लगा, जैसे आज से ही ये लोग टुलटुल को रोक रखना चाहते हैं। उत्तेजित स्वर में वोला, "बुलाओ टुलटुल को अभी !"

"जल्दी क्यों मचा रहे हो? आ जायगी। यहां आकर उसको वहुत अच्छा लगता है, वह वापस जाना ही नहीं चाहती।"

"बिलकुल झूठ है। टुलटुल इस घर में आना नहीं चाहती। उसको जवदस्ती लाना पड़ता है। मेरी भी यहां आने की इच्छा नहीं होती।"

"इस घर में न हो, लेकिन इस मुहल्ले में कई वार तुमको देखा है।"

दीनेन की इस बात को अनसुना कर वह दरवाजे की ओर वढ़ गया। जैसे भी हो, टुलटुल को यहां से निकाल कर ले जाना होगा। अगर जरूरत पड़ी तो वह इसके लिए इस घर को तहस-नहस भी कर देगा। टुलटुल को रोककर रखेंगे ये लोग! इनकी इतनी मजाल?

वह जोर से चिल्लाकर वुलाने ही जा रहा था कि देखा, रनेन की मां खुद टुलटुल के साथ सीढ़ी उतर रही हैं। दीपू को देखकर वह लगभग भागती हुई उसके पास नीचे गईं। उसका हाथ पकड़कर दीपू बोला, "वहुत देर हो गई है, चलो।"

वाहर निकल कर दोनों कुछ देर चुपचाप चलते रहे। दीनेन को उसने खूव आड़े हाथ लिया था। लेकिन उसे कोई खुशी नहीं हो रही थी। कुछ देर बाद सूखे गले से वह वोला, "तुमको कहा था न कि दस मिनट में चली आना।"

"टुलटुल ने डरकर उत्तर दिया, "क्या करती? मुझको वे तीन तल्ले पर ले गये थे।"

दीपू ने उसके माथे पर हाथ फेरते हुए कहा, "तुम्हें एक और जगह ले चलता हूं।"

१०

टुलटुल का हाथ थामे दीपू ने रास्ता साफ किया। बड़े रास्ते से होकर थोड़ा गली में जाने पर बीच में शांता का घर पड़ता है। जैसे ही वे दरवाजे के पास पहुंचे, उसको लगा कि शांता इस समय घर में नहीं है। उसको यह कैसे पता चल जाता है, खुद भी नहीं जानता। दरवाजा सामने से थोड़ा खुला हुआ था। यह जानते हुए भी कि शांता इससमय घर में नहीं है, यहां तक आकर वह योंही नहीं लौट सकता। थोड़ा अन्यमनस्क होकर उसने टुलटुल से कहा, "चलो, यह एक मौसी का घर है। तुमको अच्छा लगेगा।"

दोतल्ले पर पहुंचते ही शांता की छोटी बहन रिनी से मुलाकात हो गई। वह यह कहते हुए खुशी से ऊपर भागी, "अरे, दीपूदा! यह कौन है? आपके भैया की लड़की है क्या? मां, दीपूदा आये हैं।"

"भैया की नहीं, मेरी दीदी की लड़की है।"

"कितनी प्यारी है!"

"रिनी, आज तुम्हारा स्कूल नहीं है?"

"नहीं, आज हम लोगों को छुट्टी है।"

तीन तल्ले से शांता की दीदी सुरभि भी उतर आयी। शादी के तीन-चार वर्ष बाद ही चेहरा भर गया। उसके चेहरे के भाव भी हर समय भारी-भरकम लगते हैं। हंसी भी भरी-पूरी, मानो इस पृथ्वी पर जो कुछ प्राप्य था, वह उसे मिल गया। भरपूर हंसी हंसकर बोली, "दीपू, कैसे हो? बहुत दिनों से देखा ही नहीं तुमको। यह रनेनदा की बेटी है न? [illegible]

कितनी बड़ी हो गई !"

शांता के पिता की मृत्यु के बाद उसकी दीदा और जीजा इस घर में आकर रहने लगे, दीपू को पता था, लेकिन याद नहीं रहता था। हर बार वह सुरभिदी को देखते ही आश्चर्य में पड़ जाता था। वह आज से ठीक एक महीना सत्तरह दिन पहले आया था, तभी उसने सुरभि को देखा था। अपने इस मुहल्ले में आने की कैफियत देना ठीक समझकर बोला, "टुलटुल को रनेन की मां से मिलाने आया था।"

सुरभि ने पूछा, "रनेनदा ने और कोई चिट्ठी नहीं दी ?"

"नहीं।"

"देंगे भी नहीं। उनकी आशा छोड़ दो। हम लोगों को भी उनके बारे में पता चला है।"

इस बीच शांता की मां भी आ गईं। उन्होंने आंखों से इशारा किया, सुरभि, रहने दो यह सब, अर्थात् टुलटुल के सामने उसके पिता के बारे में बात न करना ही अच्छा है, यों भी रनेन के बारे में वे कुछ सुनना नहीं चाहतीं। रनेन से इस घर का अब भी मामूली-सा रिश्ता है। कभी बहुत ज्यादा आना-जाना था, मगर कुछ वर्ष हुए किसी कारण वह रिश्ता टूट-सा गया।

सुरभिदी टुलटुल को प्यार से अपने निकट लेकर बोली, "आहा, कितनी सुन्दर लड़की है ! क्या नाम है तुम्हारा ?"

शांता की मां बहुत भली औरत हैं। कभी किसी पर गुस्सा नहीं करतीं, न अविश्वास ही करती हैं। उन्होंने पूछा, "दीपू, चाय पीओगे।"

"नहीं, रहने दीजिए, इस वक्त।…"

"पीओ न, तुम्हारे साथ हम भी एक बार और पी लेंगे।"

सुरभि गोविन्द को चाय चढ़ाने के लिए कहकर बोली, "और यह क्या खायेगी ? क्यों, तुम क्या खाओगी, टुलटुल ?"

दीपू ने कहा, "इसको भी चाय दीजिए। टुलटुल को चाय पसन्द है।"

शांता की मां ने प्यार से झिड़का, "धत्त् ! इतनी छोटी लड़की चाय

क्या पीयेगी ? तुम उसको चाय पिलाना सिखा रहे हो ? उसको वल्कि नहला-धुलाकर मछली-भात खिला दूं।"

"दीपू जल्दी से वोला, "नहीं-नहीं, मैं अधिक देर नहीं ठहर सकूंगा। वस ऐसे ही आ गया था। दीदी इन्तजार कर रही होगी।"

"कितनी देर लगेगी भला! सुरभि,तुम इसको नहला तो सकोगीन ?"

"हां, क्यों नहीं। आओ, टुलटुल !"

दीपू वोला, "आज रहने दीजिये, सुरभिदी! वैसे भी टुलटुल उस घर से ढेर सारी खीर-वीर खाकर आयी है, उसको भूख नहीं होगी।"

साफ दीख रहा था कि शांता घर में नहीं है। लेकिन दीपू अपने मुंह से उसके वारे में कुछ पूछ नहीं सकता। चाय का प्याला पकड़े हुए उसने योंही सवाल किया, "गौतम कहां है ?"

रिनी ने जवाव दिया, "भैया तो वर्दवान गए हैं।"

"वर्दवान ? किसी काम से ?"

सुरभि ने मुंह विचकाकर कहा, "पार्टी के काम से। वर्दवान में उसकी पार्टी का अधिवेशन हो रहा है। अखवार में नहीं पढ़ा क्या ?"

गौतम कभी दीपू के साथ ही कालेज में पढ़ता था। अव वहकम्युनिस्ट पार्टी के काम में जुटा था। गौतम के साथ वैसे मुलाकात कम होती थी, लेकिन जव भी होती, दीपू को अच्छा लगता। शांता के पिताजी की मृत्यु के वाद उनकी जगह देने के लिए गौतम को बुलाया गया था, मगर उसने नौकरी नहीं की। प्राय: कलकत्ते के वाहर पार्टी के काम से भाग-दौड़ करता रहता था। एक वार जेल भी हुई थी, एक सप्ताह के लिए। घर की समस्याओं की वह जरा भी चिंता नहीं करता।

सुरभि के पति थोड़े उदासीन रहनेवाले आदमी थे। गाने-वजाने का खूव शौक था। गला उतना अच्छा नहीं था, पर उत्साह प्रचुर था। प्रत्येक दिन भोर में उठकर सुर-साधना करते, फिर आफिससे लौटते ही सरे शाम हाथ-पांव धोकर तानपूरा लेकर बैठ जाते। तवलची का स्थान मास्टर-साहव लेते। और भी दो-चार मित्र आ जाते। संगीत में मग्न हीतेनदा

पारिवारिक झंझटों से दूर रहते थे।

लेकिन प्रत्येक परिवार में कम-से-कम एक जिम्मेदार आदमी होता ही है। अतः इस परिवार का पूरा भार रमेनदा पर था। रमेनदा इस घर के आत्मीय हैं भी या नहीं, यह अब किसी के सोच का विषय नहीं रह गया था। रमेन इस घर में कभी शांता के पति के मित्र के रूप में आये थे। शांता के पिता रमेन के पिता को जानते थे। लेकिन अब रमेन इस घर के लड़के की ही तरह हो गये थे। कई-कई दिन हीतेन से उनकी भेंट न होती, आते और घर के अन्य लोगों को लेकर व्यस्त हो जाते। घरवालों का भी उनसे कोई-न-कोई काम लगा ही रहता। फिर ऐसा कोई काम नहीं था, जिसे रमेन न कर सकें। मगर उनमें एक अच्छाई थी। न किसी काम का श्रेय लेते, न डींग ही हांकते थे। शांता की मां को उनका बड़ा भरोसा था। दीपू को भी उनमें अबतक कोई ऐब नहीं दिखाई दिया था।

"नहीं, अब चलूंगा।" दीपू ने कहा।

"बैठिये न और थोड़ी देर। दीदी आती ही होंगी।" रिनी उसको लज्जित करने की चेष्टा में थी।

दीपू उठ खड़ा हुआ। बोला, "टुलटुल को लेकर आया हूं, दीदी चिंता करेगी। सुरभिदी, किसी दिन मेरे घर आइये न! दीदी अकेली रहती है। रिनी, तुम भी आना।"

सुरभि बोली, "तुम कभी ले नहीं गये। बस, 'आइये-आइये' करते रहते हो। अपर्णा कैसी है?"

"अच्छी है। कब चलेंगी, बताइये, मैं लेने आ जाऊंगा।"

तभी सीढ़ियों पर तेजी से चढ़ते हुए रमेनदा ऊपर आये। बोले, "आफिस के काम से बैरकपुर जा रहा हूं। लौटते हुए आप लोगों को रिनी के स्कूल पहुंचा दूंगा। तैयार रहियेगा, ढाई बजे।" दीपू को देखा तो खिल उठे, "ओहो, दीपूबाबू! बहुत दिनों से दिखाई नहीं दिये। क्या खबर है?"

दीपू लजा गया, "ठीक ही है सब।"

"तुम भी चलना इन लोगों के साथ।"

"कहां ?"

"रिनी के स्कूल में एक मेला लगा है। बच्चियों की बनायी चीजें खरीदनी होंगी महंगे दामों में। चले चलना, मजा रहेगा।"

दीपू ने कहा, "जी नहीं, मेरे लिए जाना संभव नहीं है। चलो टुलटुल, अब चलें।"

रमेन बोले, "एक गिलास पानी पिलाओ, रिनी। शांता कहां है? उसे देख नहीं रहा हूं।"

रमेनदा सहज ही शांता के बारे में पूछ सकते हैं। दीपू नहीं पूछ सकता। लेकिन रमेनदा की तरह और भी बहुत कुछ कर जो नहीं सकता।

रमेन बोल उठे, "अरे, लो, शांता आ गई। तुम कहां चली गयी थीं, शांता?"

"पोस्ट आफिस।"

"दीपू, तुम तो चले जा रहे थे। शांता, दीपू से कहो न कि दुपहर में हम लोगों के साथ रिनी के स्कूल चले।"

रमेनदा की इस तरह की बातों से दीपू हर बार उखड़ जाता था। लेकिन दूसरा कोई भी इस तरह की बातों का बुरा नहीं मानता था।

शांता ने ढेर सारे लिफाफे और अंतर्देशीय पत्र मेजपर रख दिये। धूप में चलकर आयी थी। चेहरा लाल हो रहा था। आंचल से उसने पसीना पोंछा। शांता के व्यवहार में किसी तरह की अस्वाभाविकता नहीं थी। रमेनदा की तरफ उसने ध्यान ही नहीं दिया, दीपू की ओर देखकर बोली, "दीपूदा, कब आये?"

"यही, थोड़ी देर हुई।"

"क्यों, अभी चले जाओगे?"

"हां।"

"चलो, मैं भी तुम्हारे साथ चलती हूं। तुमसे कुछ बातें करनी हैं।"

०

बाहर निकलकर भी शांता ने दीपू से कोई बात नहीं की। वह टुलटुल

से ही बातें करती रही। चलते-चलते वे श्यामबाजार के मोड़ तक पहुंच गये। कड़ी धूप के बावजूद रास्ते पर खूब भीड़ थी। सहसा शांता ने पूछा, "तुम हठात् आज सवेरे हमारे घर कैसे चले आये ?"

दीपू उन लोगोंमें नहीं है, जो कह देते हैं, तुमको देखने की इच्छा हुई थी, इसलिए चला आया। ऐसी बातें उसकी जबान पर आती ही नहीं। बोला, "ऐसे ही, उस तरफ से जा रहा था, इच्छा हुई कि एक प्याला कॉफी पीता चलूं। तुम्हारी मां कॉफी बढ़िया बनाती हैं।"

"पी ?"

"हां।"

"एकदम झूठ ! आज सुबह से ही हमारे घर में कॉफी नहीं है।"

"कॉफी न सही, चाय तो पी है। मगर तुम इस तरह क्यों कर रही हो ?"

"अब तुम हमारे घर नहीं आओगे।"

"क्यों ?"

"मैंने कहा, इसलिए।"

"क्यों, बात क्या हुई ?"

"हमारे घर रमेनदा अक्सर आते रहते हैं। मैं नहीं चाहती कि उनसे तुम्हारी मुलाकात हो। तुम्हें रमेनदा के साथ देखकर मेरे सर पर खून सवार हो जाता है। उस समय मैं अपने आपे में नहीं रह पाती। रमेनदा तुमसे कितनी नफरत करते हैं, तुम नहीं जानते।"

"नफरत करते हैं ? नहीं जी, वे तो मेरे साथ बड़ा अच्छा व्यवहार करते हैं।"

"तुम कुछ नहीं समझते। कहे देती हूं, रमेनदा से कभी भूलकर भी बात मत करना।"

"क्यों, रमेनदा ने ऐसा क्या किया है ?"

"जो किया है, मैं जानती हूं। तुम आगे से हमारे घर मत आना। मैं ही तुमसे मिलने के लिए आया करूंगी।"

११

नीलांजन यों भी रात में साढ़े नौ-दस वजे से पहले घर नहीं लौटते, लेकिन उस दिन ग्यारह वज गये। पौने दस वजे से ही माधुरी सीढ़ी की ओर कान लगाये नीलांजन की प्रतीक्षा करने लगी। दस वज गये। साढ़े दस से ज्यादा देर तो कभी करते नहीं। जवतक वे लौट नहीं आते, माधुरी कभी सोती नहीं थी। लेकिन उस दिन जाने कैसे विस्तरे पर पड़ते ही उसे नींद आ गई। एक मासिक पत्रिका के पन्ने उलटते-पलटते कव आंख लग गई, पता नहीं चला। नींद टूटते ही हड़वड़ाकर उठी और देखा तो नीलांजन अभीतक नहीं लौटे थे। घड़ी ग्यारह वजकर पांच मिनट वता रही थी।

शुभ्रा का कमरा अंधकार में डूवा हुआ था। वे दोनों अभी सोये नहीं थे। उनकी वातें सुनाई दे रही थीं। माधुरी थोड़ा हटकर खड़ी हो गई। इतनी देर करने के लिए नीलांजन पर गुस्सा आ रहा था। नीलांजन अकारण तो इतनी देर करते नहीं। चिंता उसे नहीं हो रही थी। नीलांजन किसी विपत्ति में पड़े हैं, इसे वह मन में भी लाना नहीं चाहती, फिर भी मन उसका मनो रोने को हो रहा था। असल में उसे इस तरह अंधेरे में खड़े होने से डर लग रहा था। अभीतक चांद निकला नहीं था। धुंधलके में आकाश अजीव-सा लग रहा था। वीच-वीच में कोई टैक्सी तेजी से गुजर जाती और उसकी तीखी आवाज उसे चौंका देती। अकेले इस तरह खड़े हुए उसे लगने लगा मानो समय आंखों के सामने से खड़खड़ाता निकला जा रहा है। उसे ऐसा आभास हुआ, जैसे यहां पर वहुत समय से खड़ी है और रास्ते की ओर देखते-देखते उसकी आंखें दुखने लगी हैं। लपककर वह कमरे में आई और घड़ी देखी तो वाप रे, ग्यारह वजकर चालीस मिनट !

माधुरी धक्-से रह गई, चेहरे पर पीलापन छा गया। एक ही साथ चिंता और भय से ग्रस्त हो गई। पागल की तरह उसने दो-तीन वार कमरे

से बरामदे तक चक्कर लगाया और पुकार उठी, "शुभ्रा, ओ शुभ्रा, सो गई क्या ?"

शुभ्रा का कमरा अंधकार में डूबा पड़ा था। अब कोई आवाज भी नहीं आ रही थी। जवाब देने से पहले खट् करके मद्धिम रोशनी जली और शुभ्रा ने पूछा, "कौन ? माधुरी ? क्या हुआ ?"

"जरा सुनो तो। रतनदा सो गये क्या ?"

"क्यों, क्या बात है ? नीलांजनदा अभी तक नहीं लौटे ?"

"नहीं।"

रतनदा को बाहर आने में थोड़ी देर लगी। सो रहे थे, लेकिन हठात् नींद टूट जाने का कोई भाव उनके चेहरे पर नहीं था। शांत स्वर में बोले, "क्या हुआ ? नीलांजन अभीतक नहीं आया ? कुछ बताकर नहीं गया था ?"

"नहीं।"

"किसी दोस्त के घर तो नहीं रुक गया ?"

"दोस्त के घर क्यों रुकेंगे ? बिना बताये इस तरह कभी कहीं रुके नहीं हैं।"

"थोड़ी देर और देख लो। शायद लौटता ही होगा। बहुत ज्यादा समय नहीं हुआ है अभी।"

"बारह बजने वाले हैं। इतनी देर से लौटेंगे कैसे ?"

"बारह बजे तक तो बस चलती है। इसके अलावा टैक्सी भी है।"

"लेकिन इतनी रात तक कभी कहीं रुके नहीं।"

अब शुभ्रा आगे बढ़ आयी और बोली, "तुम बेकार सवाल-जवाब कर रहे हो। थोड़ा बाहर निकलकर पता क्यों नहीं लगाते ? न हो तो उस घर जाकर पूछताछ करो।"

"उस घर यानी ?" रतन ने पूछा।

"यानी एम्हर्स्ट स्ट्रीटवाले घर। माधुरी, तुम्हारे देवर को फोन करके क्या नहीं पूछा जा सकता? तीन तल्ले से फोन तोकिया ही जा सकताहै।"

रतन हठात् हंस पड़ा, एम्हर्स्ट स्ट्रीट यानी नीलांजन का पैतृक घ
यहां अपने घर अपनी पत्नी को खबर न देकर वहां खबर करने
जायगा ?

माधुरी कुछ न बोली, पर शुभ्रा को गुस्सा आ गया। फटकारते क
"तुम हंस रहे हो, लज्जा नहीं आती! नीलांजनदा अभीतक नहीं
और तुम खड़े-खड़े किंतु-परंतु कर रहे हो! यदि स्वयं जाना नहीं चा
तो मैं ही तीन तल्ले पर जाकर फोन कर आती हूं। एम्हर्स्ट स्ट्रीट से ख
न मिली तो थाना अथवा अस्पताल..."

अब रतन थोड़ा गंभीर होकर बोले, "देख रहा हूं कि माधुरी
ढाढ़स बंधाने के बदले तुम उसे डरा रही हो। थाने-अस्पताल में क्य
पता नहीं कर सकता? लेकिन नीलांजन यह सुनकर कल मुझ पर गु
हुए बिना न रहेगा। कहेगा, औरतों की बातों में तुम भी आ गये।"

शुभ्रा को यह तर्क स्वीकार न हुआ। बोली, "वाह, इतनी रात
गई, वे लौटे नहीं, माधुरी अब क्या करेगी?"

रतन समझ गया कि इन लोगों के तर्क के आगे वह टिक न सकेग
संयत होकर बोला, "और थोड़ी देर देखो, उसके बाद नहीं होगा तो
पता लगाने चला जाऊंगा।"

वे तीनों बाहर बरामदे में आ गये। रतन, उसके पास शुभ्रा अ
शुभ्रा के पास माधुरी—इस क्रम से खड़े हो गये। इतनी रात में भी लो
को रास्ते पर चलते हुए देखकर थोड़ी चिंता कम हुई। अभी उन्हें बराम
में खड़े ज्यादा देर नहीं हुई थी कि साइकिल क्रि-क्रि करते हुए एक लड़
बरामदे से नीचे आकर रुका। वह साइकिल से उतरा नहीं, एक पैर जमी
पर टिकाये खड़ा हो गया और ताककर बोला, "भाभी..."

माधुरी उस लड़के को पहचानती नहीं थी। कभी देखा भी नहीं था
उत्सुकता से पूछा, "हां, क्यों? क्या हुआ?"

वह लड़का बड़े ही सहज भाव से बोला, "नीलांजनदा आज
लौटेंगे नहीं। एस्प्लेनेड के जुलूस में गिरफ्तार हो गये हैं। [illegible]

के लिए तैयार नहीं हुए। डर की कोई वात नहीं है।" यह कहकर लड़का तेजी से साइकिल दौड़ाता हुआ चला गया।

माधुरी व्याकुल स्वर में कहती रह गई, "सुनिये, सुनिये, थोड़ा रुकिये…"

उस लड़के ने दूर जाते हुए जवाव दिया, "कल सुवह अखवार में खुद पढ़ लीजियेगा। चिंता न कीजियेगा।"

रतन ने वातावरण थोड़ा हल्का करने के विचार से कहा, "कह तो गया कि चिंता की कोई वात नहीं है।" अव किसी के सोने का सवाल तो था ही नहीं। माधुरी को दिलासा देना जरूरी था। रतन ने उसकी पीठ पर हाथ रखते हुए कहा, "आओ, आज सारी रात वैठकर वातें करेंगे। अखवार साढ़े छह वजे से पहले तो आयेगा नहीं।"

माधुरी हतवुद्धि होकर देर तक रतनदा की तरफ ताकती रही। फिर एकदम घवराकर वोली, "और कुछ तो नहीं हुआ न? गोली-वोली…"

रतन वोले, "दुत्! कुछ होता तो क्या लड़का वताता नहीं। शुभ्रा, आज तुमने रेडियो से स्थानीय समाचार सुना था?"

"नहीं, नहीं सुन पाई।"

"दस वजे तो मैं ही क्लव से लौटा हूं। आज इस तरह की किसी घटना के वारे में मैंने नहीं सुना। गोली-वोली कुछ नहीं चली है।"

इस वीच माधुरी ने अपने को संभाल लिया था। वह अवतक चुप ी थी। अव धीरे-से वोली, "नहीं-नहीं, आप लोग सारी रात क्यों ों? सोइये जाकर।"

रतन वोले, "वाह, अकेली कैसे रहोगी? अकेले रहने पर तो रोने गी।"

"नहीं, रोऊंगी क्यों?"

"साफ देख रहा हूं, आंखों के नीचे पानी जमा हो चला है।"

"नहीं, विलकुल नहीं।"

ुभ्रा ने ही रास्ता निकाला। रतन से वोली, "तुम जाकर सो रहो।

मैं माधुरी के साथ रहूंगी।"

माधुरी इसके लिए भी राजी नहीं हो रही थी, लेकिन उसकी बात भी नहीं मानी गई। शुभ्रा को माधुरी से बहुत स्नेह था। उसने उसके एतराज पर कोई ध्यान नहीं दिया।

रतन ने धीमे स्वर में कहा, "नीलांजन के लिए मन में पीड़ा होती है और आदर भी। वह बहुत अच्छा आदमी है,लेकिन मुश्किल यह है कि इस पृथ्वी पर अब अच्छा आदमी बनकर जीना बहुत मुश्किल हो गया है।"

माधुरी ने अपनी तरफ से कुछ नहीं कहा। शुभ्रा ही बोली, "पाजी, बदमाश होकर बड़े होने से अच्छा आदमी होकर कष्ट पाना कहीं अच्छा है।"

रतन ने फिर अपनी बात दुहराई, "नीलांजन की तरह के आदमी को राजनीति में नहीं जाना चाहिए। मैं यह नहीं कह रहा कि राजनीति में जाना खराब है, लेकिन नीलांजन झूठ नहीं बोलता, झूठी बातों से घृणा करता है, जब कि इस लाइन में रहकर झूठ न बोले, ऐसा एक भी आदमी मैंने नहीं देखा। बड़े-बड़े श्रद्धेय नेतागण भी दिन-दहाड़े सफेद झूठ बोलते हैं !"

इतना कहकर रतन चल दिये। अभी दरवाजे तक पहुंचे ही थे कि माधुरी ने पीछे से टोका, "रतनदा, सुनिये।"

माधुरी के गले की आवाज भीगी हुई थी। रतन ने चौंककर देखा, दीवार की तरफ पीठ करके माधुरी खड़ी थी। उसकी आंखों में आंसू थे। रतन को लगा, इतना सुंदर चित्र उसने कभी नहीं देखा। दूसरे ही क्षण हड़बड़ाकर वह पूछ बैठा, "क्या हुआ माधुरी ? इस तरह क्यों कर रही हो ?"

"आप बताइए, सचमुच उनको कुछ भी नहीं हुआ है न ?"

शुभ्रा ने बढ़कर माधुरी को अपनी बांहों में ले लिया। बोली, "पागल हुई हो ! भला इस तरह की बातें की जाती हैं ! चलो।"

रतन समीप आकर बोले, "अरे, तुम रो रही हो ! मैं कह जो रहा हूं कि नीलांजन को कुछ नहीं हुआ। तुम्हें तो उसके लिए गौरवान्वित होना

चाहिए। हम लोग सिर्फ खा-पी और घूम रहे हैं, जबकि नीलांजन वास्तव में कुछ कर रहा है—अपने लिए नहीं, दूसरों के लिए।"

अगले शाम तक रतन सही-सही खबर लेकर लौटे। वे अदालत में जाकर दूर से ही नीलांजन को अपनी आंखों से देख आये थे। वे लोग जमानत पर छूटने को राजी नहीं हुए। अदालत के भीतर खड़े होकर उन लोगों ने ऊंचे स्वर से नारे लगाये थे, इसलिए उन्हें आठ दिन तक और बंद रखने का हुकुम हुआ था।

रतन ने यह भी कहा था कि नीलांजन ने दूर से ही इशारा करके बताया है कि माधुरी से कह देना, मेरी बिलकुल चिंता न करे, मैं अच्छी तरह हूं।

१२

रासमोहन ने सौ-सौ रुपये के दो नये करारे नोट निताई को दिये और बोले, "जाओ, अब कलकत्ता मत आना। बाहर कहीं पान-बीड़ी की दुकान खोल लेना।"

निताई इस समय भी चादर ओढ़े हुए था। एक हाथ बाहर करके उसने दोनों नोट ले लिये और दूसरे ही क्षण वह हाथ पुनः चादर के अंदर छिप गया। फिर नम्रता से बोला, "बड़ी सहायता की आपने, रासूदा। पास में एक भी पैसा नहीं था।"

"जाओ, अब कलकत्ता मत आना। फिर जरूरत पड़े तो चिट्ठी लिख देना।"

निताई ने हंसते हुए कहा, "भला चिट्ठी लिखकर मंगाने से कोई रुपये भेजता है ? आजतक ऐसा कोई आदमी मैंने नहीं देखा। क्या आप

भेजते ? कह देते चिट्ठी ही नहीं मिली। बस किस्सा खतम !"

"तुमने मुझे कभी चिट्ठी लिखी है ?"

"जी हां, एक बार पोस्टकार्ड..."

"बाप रे, पोस्टकार्ड ! घर पर अगर कोई देख लेता ? एक लिफाफा खरीदने को भी तुम्हारे पास पैसा नहीं रहता है ?"

उसमें मैंने सब खोल कर थोड़े ही लिखा था। फिर आपका पता भी ठीक से याद नहीं था। खैर, इस बार आपने रुपये देकर मुझे बचा लिया। तीन-चार दिन जरूर लगा दिये, मैंने तो समझ लिया था कि आप देनेवाले नहीं हैं।"

"रुपये-पैसे जुटाना पड़ते हैं। अभी मेरी आमदनी तो है नहीं।"

"जी हां, यह तो मैं भी समझता हूं कि रुपये जुटाना आसान काम नहीं, लेकिन, रासूदा, आपने सौ रुपये वाले नोट दिये हैं। अब मैं इन्हें कहां भुनाऊं ?"

"सीधे हावड़ा स्टेशन चले जाओ, वहीं भुना लेना।"

"दो रुपये और दीजिए।"

"रासमोहन ने तीखी निगाहों से निताई की ओर [illegible]

"और खुदरा-उदरा नहीं है, जाओ !"

चादर के भीतर से निताई हाथ फिर बाहर निकल [illegible]

करते हुए कहने लगा, "इस तरह क्यों ठुकरा रहे हैं [illegible]

होकर मांग रहा हूं। चाय पीऊंगा। चाय की दुकान [illegible]

भुनेगा नहीं।"

"नहीं, अब मैं कुछ नहीं दूंगा।"

"इस तरह देर तक हाथ पसारे रहे [illegible]

मांग रहा हूं।"

रासमोहन ने बटुआ निकाल [illegible]

रुपये का नोट था और एक एक [illegible]

"पांच रुपये का नोट [illegible]

दो रुपये मांगे हैं तो..."

सिगरेट की दुकान से एक पैकेट सिगरेट खरीद कर निताई ने नोट भुनाया। स्वयं दो रुपये रखकर बाकी रासमोहन को लौटा दिये। उसके बाद उसने रोनी आवाज में पूछा, "यदि पकड़ लिया जाऊं तो मुझे फांसी होगी।"

"निताई!"

"मुझे हमेशा यही लगता है, रासूदा, कि इस बार जरूर पकड़ लिया जाऊंगा। ऐसे और कितने दिन चलेगा? इसलिए सोचता हूं कि पुलिस पकड़े, उससे पहले खुद ही गिरफ्तार हो जाऊं।"

"मरना चाहते हो क्या?"

"नहीं, मरना तो नहीं चाहता। मरना भला कौन चाहता है, बोलिये? आपकी उम्र तो कम नहीं, लेकिन, क्या आप मरना चाहते हैं? इसीलिए कह रहा था कि अगर अपने-आपसे गिरफ्तार हो जाऊं तो फांसी नहीं होगी।"

"यानी खुद भी मरोगे और हम लोगों को भी मारोगे!"

"नहीं-नहीं! आप क्यों डरते हैं? आपने तो अपने हाथों कुछ किया नहीं है। फिर आपकी बड़े लोगों से जान-पहचान है और बड़े आदमियों को पुलिस कुछ नहीं कहती। आपका बाल भी बांका न होगा।"

"तुम कहना क्या चाहते हो?"

"कुछ भी नहीं, क्योंकि कहने से आप समझ नहीं पायेंगे। आपको किसी तरह की मुसीबत नहीं भोगनी पड़ रही है। आपका सिर्फ रुपया डूबा है। और मैं पागल कुत्ते की तरह भागता फिर रहा हूं! मेरा भी जीवन था, कोई चोर-डकैत तो था नहीं।"

"दोस्ती तो तुमने ऐसे ही लोगों से की थी। मुझे फुसलाकर तुमने अच्छा नहीं किया।"

"छोड़िये उस बात को। आप क्या दूध-मुंहे बच्चे थे, जो मेरी बातों में आ गये? सुनकर कोई विश्वास करेगा भला? लोभ तो आपको

हुआ था ।"

रासमोहन ने निताई का हाथ पकड़कर कंपित स्वर में कहा, "निताई, और कुछ दिन माथा ठंडा रखो । मेरा मान-सम्मान सब मिट्टी में मिल जायगा । मेरे लड़के यदि…"

"आपके बच्चे हैं और क्या मेरे पिता-माता नहीं हैं ?"

"निताई, तुम्हीं मुझे बचा सकते हो ।"

"आपके मान-सम्मान की बात सोचकर ही तो अभी तक चुप हूं । आप सोचते होंगे कि डर दिखाकर आपसे पैसा वसूल कर रहा हूं । लेकिन लाख-लाख रुपये पाकर भी अब यह जीवन मुझे मंजूर नहीं ।"

निताई का हाथ रासमोहन ने छोड़ दिया । अपने को संयत करते हुए गंभीर स्वर में बोले, "आगे क्या करोगे, कुछ सोचा है ?"

"छह महीने और देखूंगा । उसके बाद इसी कलकत्ते में निश्चिंत होकर घूमूं-फिरूंगा । जो होगा देखा जायगा । मरना भी कबूल है ।"

"ठीक है, यही करना ।"

दोनों कुछ देर एक-दूसरे को घूरते रहे । रासमोहन निताई की ओर ताकते हुए भी कुछ सोच रहे थे । निताई ही पहले रवाना हुआ । एक हाथ से चलती ट्राम का डंडा पकड़कर पीछे वाले डिब्बे में चढ़ गया । रासमोहन ने मीलाली के पास से एक रिक्शा ले लिया । यहां से उनका घर काफी दूर था, परंतु ट्राम की भीड़ में धक्के खाने की आदत वे अबतक डाल नहीं सके थे ।

रिक्शा वाले को बिना मोल-भाव किये रासमोहन ने दो रुपये दे दिये । सीढ़ी चढ़ते हुए बड़ी व्यग्रता से उन्होंने बेटी को पुकारा, "पुनि ! पुनि !" ऊपर पहुंचकर खिड़की से अपर्णा के कमरे में झांका । वह कापी में बड़े मनोयोग से कुछ लिख रही थी । पिताजी की आवाज सुनी तो जल्दी से कापी बंद कर उसे अन्य किताबों के बीच छिपा दिया और उठ खड़ी हुई ।

रासमोहन बिना किसी भूमिका के बोले, "पुनि, मैंने मकान बेचने का फैसला कर लिया है। कलकत्ता छोड़ दूंगा। यहां अब अच्छा नहीं लगता।"

अपर्णा चुपचाप सुनती रही।

"तुम्हारे मौसा ने तो एक बार कहा भी था कि कोई इस मकान का पच्चासी हजार रुपये तक देने को राजी है। उसीको दे दूंगा। अगर तुम्हारे मौसा खुद लेना चाहें···उनके पास ढेरों रुपये हैं। रोज ही पांच-छह रोगी मार रहे हैं और सौ-सौ के हिसाब से रुपये जेब में भर रहे हैं।"

अपर्णा फिर भी चुप रही।

"दोनों लड़कों को एक भी पैसा नहीं दूंगा। अपना रास्ता वे खुद ही चुन लें। छोटका कहां गया है? घर में है क्या?"

"नहीं, दीपू घर पर नहीं है।"

"कलकत्ते से निकल कर पहले सारा देश घूमूंगा। उत्तरप्रदेश में कहीं एक छोटा-सा घर बना लूंगा, बीच-बीच में आकर टिकने के लिए, लेकिन अधिकतर घूमता रहूंगा। तुम मेरे साथ रहोगी..."

अपर्णा अब भी चुप, मुंह नीचा किये कलम का ढकना खोलती, बंद करती रही।

"तुम भी कलकत्ते में रहकर क्या करोगी? रनेन अब लौटेगा नहीं। उसके बारेमें सोचना भी बेकार है। नई-नई जगह घूमना तुमको भी अच्छा लगेगा।"

अपर्णा फिर भी खामोश रही। पासवाले घर की लड़कियों के साथ बरामदे में खेलती हुई टुलटुल की आवाज सुनाई दे रही थी।

"चुप क्यों हो?"

"पिताजी, टुलटुल का क्या होगा?"

"होगा क्या? वह भी हम लोगों के साथ रहेगी।"

"उसकी पढ़ाई-लिखाई कैसे चलेगी?"

"तुम घर पर पढ़ाना।"

"पिताजी, मैं टुलटुल को पढ़ाना चाहती हूं।"

"घर पर पढ़ाने से क्या पढ़ाई नहीं होती ?"

"लेकिन घर की पढ़ाई बहुत दूर तक चल जो नहीं पाती।"

"ठीक है, उसको किसी होस्टल में रख देंगे। आजकल स्कूल पूरे साल खुले ही कितने दिन रहते हैं! इन छुट्टियों में वह हमारे साथ रहेगी। फिर किसी बढ़िया स्कूल में, शांतिनिकेतन, उत्तर प्रदेश या दिल्ली की तरफ लड़कियों के किसी अच्छे स्कूल में, और तुम चाहो तो साहबों के स्कूल देहरादून में उसे दाखिला करा देंगे।"

"पिताजी, मेरा कलकत्ते में रहना जरूरी है।"

अपर्णा आगे और कुछ कहना चाह रही थी, बोलने के लिए मुंह भी खोला, लेकिन बोल नहीं पायी। थोड़ी देर चुप रहकर धीरे-धीरे बोली, "टुलटुल को छोड़कर मैं रह नहीं सकती। मैं उसको होस्टल में रखना नहीं चाहती। आपकी जो इच्छा हो, कीजिए। मेरे कारण आपको कोई असुविधा नहीं होगी। मैं अपनी व्यवस्था खुद कर लूंगी।"

"क्या व्यवस्था करोगी ?"

"भैया और दीपू के बारे में आप सोचते हैं कि वे अपनी व्यवस्था खुद कर सकते हैं, तो क्या मैं नहीं कर सकती ?"

"उन लोगों के साथ तुम्हारी क्या तुलना है ? वे पुरुष हैं, उनकी जो इच्छा हो कर सकते हैं।"

"मैं भी कर सकती हूं।"

"क्या बोली ?" रासमोहन का स्वर तीखा हो गया था।

अपर्णा हतप्रभ नहीं हुई। बोली, "जिंदा रहने के लिए यदि वे कुछ कर सकते हैं तो मैं भी कर लूंगी। नहीं होगा तो स्कूल मास्टरी..."

"तुम्हारी कोई व्यवस्था नहीं कर गया, तो लोग मेरी बदनामी नहीं करेंगे ?"

"आप तो सारा देश घूमते रहेंगे, लोग बदनाम कैसे करेंगे ?"

रासमोहन को पुनः गुस्सा आ गया। बोले, "मान-अपमान की बात तेरी समझ में नहीं आयगी। जिनको मान-अपमान का खयाल है, वे कभी

ऐसा काम नहीं करते कि लोग बदनाम कर सकें। तुम अपने मौसा के पास जाकर रहना। मैं महीने-महीने रुपये भेज दूंगा।"

"नहीं,मैं किसी के घर जाकर नहीं रहूंगी। आपको सचमुच मेरे लिए किसी प्रकार की चिंता नहीं करनी पड़ेगी। लेकिन मैं दूसरी ही बात सोच रही थी। आपकी तबीयत ठीक नहीं रहती, अकेले कैसे घूमेंगे? किसी का आपके साथ रहना जरूरी है।"

"रहने दो, रहने दो! मेरे लिए किसीको सोचने की जरूरत नहीं। सभी ने सोच-सोचकर कितना उद्धार कर दिया है मेरा!"

रासमोहन तेजी से घर से बाहर चल दिये। दरवाजे के पास पहुंचते-पहुंचते फिर फट पड़े।

उनकी तेज आवाज सुनकर टुलटुल भागी आई और ठिठककर आश्चर्य से नाना की तरफ देखने लगी।

१३

शीत-ताप-नियंत्रित कमरा; बिना अनुमति एक झोंका हवा का भी प्रवेश करने का अधिकार नहीं, एक विशाल मेज के उस पार बैठा अरूप। गोरा रंग, छोटा गोल चेहरा और उसपर खूब लेप लगाया हुआ, ढंग से बंधी टाई, बालों में क्रीम, केश सजे-संवरे व्यवस्थित, कोट की ऊपर वाली जेब में रूमाल। कुल मिलाकर कमरा और अरूप एक चित्र की तरह लग रहे थे, वास्तविक नहीं।

चपरासी को पुर्जा देकर ही दीपू का अंदर जाना संभव हुआ। भीतर जाकर देखा तो अरूप के सामने उसके कालेज का ही एक साथी हिरण्यमय बैठा था। उसे अरूप ने केक और कॉफी खिलाई-पिलाई थी, लेकिन दीपू

से कॉफी पीने तक का अनुरोध नहीं किया। दीपू को देखते ही हिरण्यमय के चेहरे पर पहले निराशा छा गई, फिर तुरंत बाद सोल्लास बोला, "अरे, दीपू ? सौभाग्य है कि मैं यहां था, इसलिए तुमसे मुलाकात हो गई। तुम यहां बराबर आते हो?"

दीपू ने कहा, "नहीं, आज पहली बार आया हूं।"

कुछ ही महीनों से अरूप दफ्तर आने लगा था, लेकिन इसी बीच बड़े अफसर की तरह कम बोलना सीख लिया था। बैठा मंद-मंद मुस्कराता रहा। दीपू ने कमरे में प्रवेश करते ही समझ लिया था कि अरूप से वह बात नहीं कही जा सकती, जिसके लिए वह अपने घर से चलकर यहांतक आया है। उसने सोचा था कि अरूप के पिता के मार्फत अपने भैया का पता लगाने की कोशिश करेगा। अरूप के पिता का पुलिस से ही नहीं; सचिव और मंत्री तक से घनिष्ट परिचय था।

हिरण्यमय और अरूप की बातचीत के बीच दीपू हां-हूं करता बैठा रहा। अंत में हिरण्यमय अरूप से यह कहता हुआ उठ खड़ा हुआ, "अब चलूं। काफी समय तुम्हारा ले लिया। दीपू, तुम भी चलोगे? बाहर कहीं चाय पी जाय।"

दीपू बोला, "अरूप, तुम भी चलो! कहीं चाय-कॉफी पीयेंगे।"

अरूप ने कायदे से अपनी हाथ घड़ी देखी। थोड़ी देर तक सोचता रहा, फिर उसने कहा, "नहीं, अभी मैं नहीं निकल पाऊंगा; कुछ काम है उसे पूरा करना है।"

दीपू ने हिरण्यमय से कहा, "तब चलो, हम दोनों ही चलें।" उसने मन में सोच लिया था कि इस आफिस में फिर कभी नहीं आयेगा।

दरवाजा खोलकर वे दोनों कमरे से निकल ही रहे थे कि हिरण्यमय ने कहा, "एक सेकंड। अरूप से एक जरूरी बात कहनी रह गई।"

मगर दीपू रुका नहीं, दरवाजा ठेलकर बाहर आ गया और दीवार की तरफ मुंह करके खड़ा रहा। हिरण्यमय के आ जाने पर वह उसके साथ जैसे ही कदम बढ़ाने को हुआ, अरूप ने बाहर झांककर टोका, "दीपू, जरा

सुनना।"

दीपू ने घूमकर देखा और ठंडे स्वर में बोला, "नहीं, आज नहीं। तुम व्यस्त हो।"

"सुनो भी, एक बात है।" अरूप ने हाथ से इशारा किया और दीपू के नजदीक आने पर धीरे से कहा, "हिरण्यमय के साथ जाकर तुम क्या करोगे? बक-बककर दिमाग चाट गया है। उसको जाने दो, तुम बैठो। तुमसे कुछ बातें करनी हैं।"

दीपू ने आश्वस्त होकर लंबी सांस ली। अरूप अगर इतना भी न करता तो मन पर इसका बोझ रह ही जाता। फिर भी बोला, साथ जाने की कहकर अब उसे मना कैसे करूं?"

"तुम चुपचाप बैठो। मैं कहे देता हूं।"

अरूप उठकर दरवाजे के पास गया और बोला, "हिरण्यमय, तुम अकेले ही जाओ। मुझे दीपू से काम है। वह अभी रुकेगा।"

हिरण्यमय हंस दिया, "ठीक है, कोई बात नहीं। अच्छा, तो मैं परसों आऊंगा।"

अपनी कुर्सी पर लौट आकर अरूप बोला, "सुना, फिर परसों आकर मेरी जान खायेगा। उफ!"

"वह आया क्यों था?"

"उसे नौकरी चाहिए।"

"नौकरी? वह तो आसनसोल में अच्छी खासी नौकरी कर रहा है।"

"कहां की अच्छी नौकरी! पांच-छह सौ रुपये महीने मिलते होंगे, वह भी आसनसोल में। दो बच्चे हैं और उसकी पत्नी को पूरे समय एक नौकरानी रखने की आदत है। खर्च-वर्च चला नहीं पा रहा है। इसीलिए चाहता है कि यहां हजारेक रुपये की कोई नौकरी मिल जाय। मैंने स्पष्ट कह दिया कि अभी कोई जगह खाली नहीं।"

"तुम मुझे जो नौकरी देना चाह रहे थे, वह खाली नहीं है?"

अरूप दार्शनिक की तरह बोला, "इस धरती पर कहीं भी कुछ खा

रहता है ?"

दीपू ने थोड़ा झुंझलाकर कहा, "मैं धरती की बात नहीं पूछ रहा हूं, तुम्हारे दफ्तर की बात कर रहा हूं।"

"यदि तुम नौकरी करना चाहो तो अभी भी जगह खाली है, लेकिन हिरण्यमय के लिए नहीं।"

"तुम एकदम चालू किस्म के आदमी हो गये हो, अरूप। अगर सचमुच नौकरी देने की क्षमता तुममें है तो तुम हिरण्यमय को ही नौकरी दे दो। उसको देखकर लगता है कि वह वास्तव में दुःखी है। तुम जानते ही हो कि मैं तो तुम्हारी नौकरी कर नहीं सकता।"

"दुःखियों की इस दुनिया में कमी नहीं है। खैर, छोड़ो, हिरण्यमय की बात। यह बताओ कि चाय पीओगे या कॉफी ?"

"कॉफी और केक।"

घंटी बजाकर अर्दली को अरूप ने आर्डर दे दिया, फिर अंगुली से टाई की गांठ ढीली करते हुए बोला, "तुमसे मिलना बहुत जरूरी था। मेरे जीवन में एक बड़ी घटना हो गई है।"

"क्या ?"

"सपना के साथ मेरी शादी नहीं हो रही है।"

"अरे हां, इसी महीने तुम्हारी उससे शादी होने की बात थी। क्यों, क्या हो गया ?"

"बहुत सारी बातें हैं। दीपू, तुम मेरी सहायता कर सकते हो।"

कुछ जरूरी कागजों पर दस्तखत कर अरूप दीपू को अपने साथ लिये घर की ओर चला। सपना का घर रास्ते में ही पड़ता था। अरूप की गाड़ी उसी जगह हठात् भीड़ में अटक गई। अरूप झुंझला उठा, मगर दीपू हंसता रहा। अरूप ने जैसे अपने से ही कहा, एक दूसरा रास्ता भी था, उसीसे जाना ठीक रहता।"

दीपू बोला, "सपना देख ले तो यही सोचेगी कि तुमने जान-बूझकर

उसके घर के सामने गाड़ी रोक रखी है।"

"सपना को पता है कि मैं इस तरह का आदमी नहीं हूं। पंद्रह दिन से इस रास्ते नहीं आया हूं। आज हठात् भूल से···"

दीपू ने उसकी बात काटकर कहा, "अपने को क्यों दोष देते हो। पहले तो रोज शाम को यहां आते थे। अब क्या झगड़ा हो गया? चलो, सपना से मिल आवें।"

"झगड़ा तो कोई हुआ नहीं है।"

"फिर क्या हुआ?"

"बताऊंगा, सब बताऊंगा, लेकिन पहले घर तो चलो। सारी बात जाने बिना तुम समझ नहीं पाओगे। दीपू, सपना के साथ मेरी शादी भले ही न हो, पर मैं यह कभी नहीं चाहूंगा कि उसका नुकसान हो। सचमुच मैं उसे बहुत चाहता हूं।"

"तुम दोनों बिलकुल बच्चे हो। न जाने किस मामूली-सी बात पर मान-अपमान को लेकर तन गए हो! मेरी बात सुनो। इतने सहज में रास्ता साफ नहीं होगा। गाड़ी एक तरफ करके रोक लो। सपना से मिल लेते हैं।"

"नहीं, यह नहीं हो सकता, और सपना अभी घर पर होगी भी नहीं। कालेज से आजकल वह सीधे घर नहीं आती है।"

"कहां जाती है?"

अरूप ने जवाब नहीं दिया, वह उदास हो गया। उसके गोरे गोल चेहरे पर विषाद की रेखाएं उभर आयीं। दीपू एक लंबी सांस लेकर अपने में सिकुड़ गया। उसे कमजोरी-सी महसूस होने लगी। अपनी इस बेबसी को वह तत्काल समझ नहीं पाया। अरूप खुद ही व्यग्र है, सपना को लेकर अंदर-ही-अंदर पीड़ित है। अपने मन का दुःख किसी के आगे खोलना चाहता है। अभी दीपू की बात सुनने का उत्साह उसमें नहीं है। एक बार भी जोर देकर उसने यह नहीं पूछा कि दीपू उसके पास किस-लिए आया है जबकि दीपू आया था अपने भैया की खोज-खबर के बारे में

अरूप के पिता की सहायता लेने !

भीड़ से निकलकर अरूप ने अपने घर के सामने गाड़ी रोक दी। वहीं से दीख रहा था कि बैठकखाने में अरूप के पिता बैठे हैं। कमर में जब से दर्द रहने लगा था, वे बाहर नहीं निकलते थे। आफिस का काम घर ही बैठकर निपटा दिया करते थे। इस समय अरूप के पिता के सामने दो आदमी और बैठे थे। उनकी केवल पीठ ही दिखाई दे रही थी।

अच्छा अवसर था। अभी अरूप से कहकर उसके पिता के साथ थोड़ी बातें की जा सकती थीं। लेकिन पता नहीं, दीपू के मन पर कैसी जड़ता छा गई कि वह अरूप से यह छोटा-सा अनुरोध भी नहीं कर सका।

गाड़ी के सब दरवाजे बंद कर अरूप बोला, "रुको, पिताजी को चाभी दे आता हूं। उसके बाद हम दोनों दोतल्ले पर चलकर बैठेंगे।"

अरूप के पिता के कमरे की तरफ बढ़ते ही दीपू ने पहचान लिया। एक क्षण के लिए वह ठिठका, पर अब रुकने का कोई मतलब नहीं था। रत्नेश्वर घोषाल के ठीक सामने अध्यापक दासगुप्ता बैठे थे, जिनकी एकाउंटेंसी फर्म में दीपू ने कुछ दिन काम किया था, और दूसरे व्यक्ति खुद उसके पिता रासमोहन थे।

दीपू को सबसे पहले दासगुप्ता ने देखा तो हंसकर बोले, "अरे, दीपांजन, कैसे हो ? तुम्हारे भैया का पता मिल गया। ठीक-से है। लगता है, कल ही छूट आयेगा।"

रासमोहन ने एक बार दीपू की ओर देखा, फिर बिना कुछ कहे निगाह नीची कर ली। लगा, जैसे अपने बेटे को देखकर उनको लज्जित होना पड़ा है। दीपू क्या करे, उसकी समझ में नहीं आया। पिताजी को यहां देख पायेगा, इसकी कल्पना भी उसे नहीं थी। इसका मतलब यह कि आखिरकार भैया की खोज में पिताजी को निकलना ही पड़ा।

रासमोहन बोले, "तो अब चलूं।"

रत्नेश्वर ने कहा, "बैठिये, चाय मंगवाई है। आप चिंता न करें। होम सेक्रेटरी ने तो कहा है कि केस उठा लेंगे। उसे अभी भी

ता है, लेकिन क्या आपका बेटा आपकी बात मानकर आना चाहेगा ?"

"जी नहीं, रहने दीजिए, इसकी जरूरत नहीं है। केवल खबर ही..."

"आप जेल में उससे मिलना चाहें तो व्यवस्था हो सकती है।"

दीपू को यह कल्पना ही अद्भुत लगी कि पिताजी भैया से मिलने जायं। या चकित रह जायंगे। उनका सारा गुस्सा पानी की तरह उतर जायगा। जब नहीं, अगर रो भी पड़ें। बड़ा कोमल मन है भैया का। तभी उसने ता को यह कहते सुना, "आपकी इस कृपा के लिए बहुत आभारी हूं, किन मिलकर क्या होगा, रहने दीजिए।"

दीपू ने मौके से फायदा उठाना चाहा और फौरन बोल उठा, "जी, मिलना चाहता हूं, अगर आप कृपया व्यवस्था करवा दें।"

रत्नेश्वर घोषाल ने दीपू की बात को कोई महत्त्व नहीं दिया। उसकी ओर देखे बिना ही बोले, "नहीं, रहने दो। दो-एक दिन में तो वह छूटकर आ ही जायगा।"

तभी अरूप ने कहा, "चलो दीपू, ऊपर चलें।"

दीपू चलने को हुआ, पर उसे बराबर लग रहा था कि पिताजी से बात न होना अच्छा नहीं है। यों वह अपने पिताजी से कम ही बोलता था, घर पर भी शायद ही कभी, लेकिन यहां तो कुछ बोलना ही होगा। उसने कहा, "पिताजी, मैं कल भाभी से मिल आया हूं, वे अच्छी हैं।"

रासमोहन ने अपने लड़के की ओर देखा, मानो इस अवांतर प्रसंग की अभी क्या जरूरत थी! उन्हें थोड़ी झुंझलाहट ही हुई। बस इतना बोले, "ओः।"

सहसा रत्नेश्वर ने अरूप से कहा, "साढ़े छः बज रहा है, तुम जल्दी मुंह-हाथ धोकर तैयार हो जाओ। तुमको अभी हावड़ा स्टेशन जाना है। अनीता और तपन आ रहे हैं। सात बजकर पच्चीस मिनट पर गाड़ी आती है।"

पिताजी को जवाब देने या मना करने का साहस अरूप में नहीं है। चेहरे पर उग आई निराशा और व्याकुलता को छिपाने की वह व्यर्थ चेष्टा करने लगा।

दीपू बोला, "तो मैं चलता हूं आज, कल फिर मिलूंगा।"

सपना के बारे में दीपू से बातें नहीं हो सकीं, इसे अरूप किसी भी तरह सह नहीं पा रहा था। उसने अनुनय भरे स्वर में कहा, "दीपू, तुम भी मेरे साथ हावड़ा स्टेशन चलो!"

"नहीं, मैं हावड़ा स्टेशन नहीं जाऊंगा।" यह कहता हुआ दीपू जल्दी से बाहर निकल आया और तेजी से आगे बढ़ गया।

१४

टुलटुल सोना नहीं चाहती, ढेर सारे खिलौने फैलाये बैठी थी। घर में और कोई छोटा बच्चा नहीं था, इसलिए पास वाले घर से एक-दो बच्चे बीच-बीच में खेलने आ जाते थे, लेकिन टुलटुल का कोई साथी नहीं था। अधिकतर वह अकेले ही खेलती, गुड़िया से अकेले बातें करती, गुड़ियों को सजाती, कपड़े पहनाती, बाल संवारती और बदमाश गुड़िया को डांट भी देती थी।

बहुत बड़ा परिवार था टुलटुल का। सब मिलाकर नौ लड़के-लड़कियां, एक भालू, दो कुत्ते—सब शादी करके निश्चित घर-परिवार संभाल रहे थे। टुलटुल की गुड़ियों के जीवन में किसी तरह की अशांति नहीं थी।

एक बदमाश गुड़िया किसी भी तरह सोना नहीं चाहती। टुलटुल उसे ठोक-पीटकर सुलाना चाह रही थी और कह रही थी, "जल्दी सो जाओ, नहीं तो शाम को पढ़ते समय नींद आने लगेगी। पढ़ाई-लिखाई नहीं करने से लोग बुरा-भला कहेंगे। सोओ, कहती हूं!" ठीक इसी समय अपर्णा आकर टुलटुल से यही बात कहने लगी, "आओ, अब सो जाओ। गुड़िया को रख दो, नहीं तो शाम को मास्टरसाहब के आने पर सोने लग..."

सकता है, लेकिन क्या आपका बेटा आपकी बात मानकर आना चाहेगा?"

"जी नहीं, रहने दीजिए, इसकी जरूरत नहीं है। केवल खबर ही..."

"आप जेल में उससे मिलना चाहें तो व्यवस्था हो सकती है।"

दीपू को यह कल्पना ही अद्भुत लगी कि पिताजी भैया से मिलने जायं। भैया चकित रह जायगे। उनका सारा गुस्सा पानी की तरह उतर जायगा। अजब नहीं, अगर रो भी पड़ें। बड़ा कोमल मन है भैया का। तभी उसने पिता को यह कहते सुना, "आपकी इस कृपा के लिए बहुत आभारी हूं, लेकिन मिलकर क्या होगा, रहने दीजिए।"

दीपू ने मौके से फायदा उठाना चाहा और फौरन बोल उठा, "जी, मैं मिलना चाहता हूं, अगर आप कृपया व्यवस्था करवा दें।"

रत्नेश्वर घोषाल ने दीपू की बात को कोई महत्त्व नहीं दिया। उसकी ओर देखे बिना ही बोले, "नहीं, रहने दो। दो-एक दिन में तो वह छूटकर आ ही जायगा।"

तभी अरूप ने कहा, "चलो दीपू, ऊपर चलें।"

दीपू चलने को हुआ, पर उसे बराबर लग रहा था कि पिताजी से बात न होना अच्छा नहीं है। यों वह अपने पिताजी से कम ही बोलता था, घर पर भी शायद ही कभी, लेकिन यहां तो कुछ बोलना ही होगा। उसने कहा, "पिताजी, मैं कल भाभी से मिल आया हूं, वे अच्छी हैं।"

रासमोहन ने अपने लड़के की ओर देखा, मानो इस अवांतर प्रसंग की अभी क्या जरूरत थी! उन्हें थोड़ी झुंझलाहट ही हुई। बस इतना बोले, "ओः।"

सहसा रत्नेश्वर ने अरूप से कहा, "साढ़े छः बज रहा है, तुम जल्दी मुंह-हाथ धोकर तैयार हो जाओ। तुमको अभी हावड़ा स्टेशन जाना है। अनीता और तपन आ रहे हैं। सात बजकर पच्चीस मिनट पर गाड़ी आती है।"

पिताजी को जवाब देने या मना करने का साहस अरूप में नहीं है। चेहरे पर उग आई निराशा और व्याकुलता को छिपाने की वह व्यर्थ चेष्टा करने लगा।

दीपू बोला, "तो मैं चलता हूं आज, कल फिर मिलूंगा।"

सपना के बारे में दीपू से बातें नहीं हो सकीं, इसे अरूप किसी भी तरह सह नहीं पा रहा था। उसने अनुनय भरे स्वर में कहा, "दीपू, तुम भी मेरे साथ हावड़ा स्टेशन चलो!"

"नहीं, मैं हावड़ा स्टेशन नहीं जाऊंगा।" यह कहता हुआ दीपू जल्दी से बाहर निकल आया और तेजी से आगे बढ़ गया।

१४

टुलटुल सोना नहीं चाहती, ढेर सारे खिलौने फैलाये बैठी थी। घर में और कोई छोटा बच्चा नहीं था, इसलिए पास वाले घर से एक-दो बच्चे बीच-बीच में खेलने आ जाते थे, लेकिन टुलटुल का कोई साथी नहीं था। अधिकतर वह अकेले ही खेलती, गुड़िया से अकेले बातें करती, गुड़ियों को सजाती, कपड़े पहनाती, बाल संवारती और बदमाश गुड़िया को डांट भी देती थी।

बहुत बड़ा परिवार था टुलटुल का। सब मिलाकर नौ लड़के-लड़कियां, एक भालू, दो कुत्ते—सब शादी करके निश्चित घर-परिवार संभाल रहे थे। टुलटुल की गुड़ियों के जीवन में किसी तरह की अशांति नहीं थी।

एक बदमाश गुड़िया किसी भी तरह सोना नहीं चाहती। टुलटुल उसे ठोक-पीटकर सुलाना चाह रही थी और कह रही थी, "जल्दी सो जाओ, नहीं तो शाम को पढ़ते समय नींद आने लगेगी। पढ़ाई-लिखाई नहीं करने से लोग बुरा-भला कहेंगे। सोओ, कहती हूं!" ठीक इसी समय अरुणा आकर टुलटुल से यही बात कहने लगी, "आओ, अब सो जाओ। गुड़िया को रख दो, नहीं तो शाम को मास्टरसाहब के आने पर [illegible]

लेकिन टुलटुल किसी भी तरह सोने नहीं जायगी। अपनी गुड़ियों के सामने इस तरह डांटा जाना उसके मन को अच्छा नहीं लगा था।

अपर्णा उसको जबरदस्ती उठाकर ले गई। यों टुलटुल शांत स्वभाव की लड़की थी, लेकिन आज एकदम हाथ-पांव पटकते हुए रोने-तड़पने लगी। अपर्णा फिर भी उसे अपनी गोद में लेकर थपथपाते हुए बोली, "सो जाओ, जल्दी। स्कूल की छुट्टी रहने पर तुम पढ़ना ही नहीं चाहतीं। इस तरह अव्वल आना तो दूर रहा, फेल हो जाओगी।"

अपर्णा साधारणतया बेटी को रुलाती नहीं थी। कभी टुलटुल ज्यादा जिद करती तो कहानियां सुनाकर मना लेती थी। टुलटुल सोना नहीं चाहती तो वह भी ज्यादा जिद न करती, अपने पास सुला लेती और पुचकारती-थपकती रहती। लेकिन आज वह अपना धैर्य खोती जा रही थी। झुंझलाकर बोली, "तुम बहुत ज्यादा सता रही हो मुझे। एक भी बात नहीं सुनती। सो जाओ अब।"

गुस्से में अपर्णा ने टुलटुल को जोर का एक थप्पड़ भी मार दिया। मां से उसने कभी मार नहीं खाई थी। आज मां के हाथ का थप्पड़ खाकर दर्द से ज्यादा अपमान में भरकर जोर-जोर से रोने लगी। अपर्णा का गुस्सा कम नहीं हुआ। बोली, "फिर रोना? रोओगी तो और मार पड़ेगी। आंख मूंदो, सोओ जल्दी!" और पिटाई की जरूरत नहीं पड़ी, रोते-रोते ही टुलटुलसो गई। अपर्णा ने उसको आहिस्ते से उठाकर बिछौने पर लिटा दिया, एक पतली चादर ओढ़ा दी और सिरहाने वाली खिड़की बंद कर दी, जिससे आंखों पर धूप न लगे।

उसके बाद अपर्णा बाल संवारने के लिए आइने के सामने खड़ी हो गई। पंद्रह मिनट के अंदर ही सज-संवरकर तैयार हो गई वह। बहुत दिनों बाद इतने ढंग से सजी थी। आकाशी नीले रंग की साड़ी, उसी रंग से मिलता-जुलता ब्लाउज और पैरों में चप्पल पहनी। फिर आप ही अपने पर मुस्कराते हुए ललाट पर एक नीले रंग की बिंदी लगा ली। कभी अपर्णा को सजना-संवरना काफी अच्छा लगता था, बीच में साज-सिंगार की

सारी चीजें उसने आलमारी में बंद कर दी थीं, लेकिन भूल नहीं पाई थी।

टुलटुल की नींद टूट न जाय, इसलिए सावधानीपूर्वक बहुत आहिस्ते से दराज खोलकर बटुआ और चमड़े की जिल्द वाली कापी निकाल ली। चलने से पहले टुलटुल की ओर देखा तो मन रुआंसा हो गया। अपने बच्चों को पीटकर इस धरती की सभी माताओं को ऐसी ही तकलीफ होती है। नीचे फर्श पर टुलटुल के तमाम खिलौने बिखरे पड़े थे। वह बिछौने पर एक तरफ सोई पड़ी थी। चेहरे पर रोने का कोई भाव नहीं था, लेकिन आंख के नीचे आंसू की रेखा सूख गई थी। आंचल से बहुत धीरे उस आंसू को पोंछकर अपर्णा ने टुलटुल के माथे पर अपना होंठ छुआ दिया। फिर मन-ही-मन बोली, क्या करूं, जितनी देर भी जागती रहती है, मुझे घर से निकलने ही नहीं देती।

अपर्णा ने पिताजी के कमरे में जाकर देखा तो वे आंख मूंदकर पड़े थे। सोये हैं या आंख मूंदकर पड़े हैं, पता नहीं चला। अपर्णा ने धीमी आवाज में दो बार पुकारा, कोई जवाब नहीं मिला। तीसरी बार पुकारने पर रासमोहन ने आंख बंद किये हुए ही पूछा, "क्या है?"

"बाबा, मैं थोड़ा बाहर जा रही हूं। टुलटुल सोई है, यदि उठे तो देख लीजिये।"

"उसका खाना तैयार करके रख दिया है न?"

"जी हां, पानूर की मां शाम को आकर उसे खिला देगी।"

"अच्छा!"

इस बीच रासमोहन ने एक बार भी आंखें नहीं खोलीं, एक बार भी अपनी लड़की की तरफ नहीं देखा; जैसे सोये पड़े थे, पड़े रहे। पिछले कई दिनों से रासमोहन अस्वाभाविक रूप से गंभीर हो गये थे, मानो किसी गहरी चिंता में डूबे हों। अपर्णा ने दीपू के कमरे की ओर एक बार देखा। जानती थी कि इस समय वह घर में नहीं रहता।

बाहर निकल कर अपर्णा ट्राम की दिशा में तेजी से चल दी।

× × ×

"क्यों, इतनी देर ?"

पतला लंबा चेहरा, नुकीली नाक, घने बाल तरतीब से उलटे जमाये हुए, आंखों पर काला चश्मा—लड़कियों की निगाह में अनिमेष चक्रवर्ती खूब जंचता था। बंगला का शिक्षक होते हुए भी वह कमीज-पतलून पहनता था, लेकिन आज उसने धोती और कुरता पहन रखा था। इस पोशाक में वह काफी सुंदर लग रहा था। अभिनेष ने टैक्सी रोकने के लिए हाथ उठाते हुए कहा, "कालेज में नौकरी करना कितने झंझट का काम है, यह आपको पता नहीं। कहीं भी थोड़ी देर खड़े रहो तो दो-चार विद्यार्थियों से मुलाकात हो ही जाती है।"

अपर्णा ने पूछा, "हम लोगों को कितनी दूर जाना है ?"

"आप गीताभवन नहीं जानतीं ? देशप्रिय पार्क के पास ही तो है।"

"टैक्सी से ही जाना पड़ेगा ? वस से नहीं जाया जा सकता ?"

अमिनेष ने घड़ी देखी और कहा, "अभी समय तो है, लेकिन सुनिये, अध्यापक होकर आप जैसी असाधारण सुंदर युवती के साथ बस में चलूंगा तो कोई-न-कोई छात्र-छात्रा देख ही लेंगे।"

"आप मुझे असाधारण सुंदरी कहते हैं, तो उस लड़की को क्या कहेंगे ?"

सामने से एक लड़की चली आ रही थी। अपर्णा से वह अधिक सुंदर थी और अपनी सुंदरता के प्रति सजग भी थी। अनिमेष ने तपाक से जवाब दिया, "यह लड़की मेरी निगाह में कुछ भी नहीं है। इस समय तो आप ही मुझे..."

आखिरकार वस ही लेना पड़ी। देशप्रिय पार्क पार कर जब वे गीता-भवन पहुंचे, तो कार्यक्रम शुरू हो चुका था। इस तरह के आयोजन में अपर्णा पहले कभी नहीं आई थी। बड़ी घबराहट होने लगी। मन में आया कि यहां न आती तो ठीक था। बहुत भीड़ थी। माइक पर घोषणा हुई, "इस बार कविता पढ़ेंगे, तारापद राय।" और तारापद राय जमे हुए गले से कविता पढ़ी, फिर भीड़ में से होते हुए एकदम सामने आकर बैठ गये।

अन्दर की धक्-धक् थम गई। अब उसे कोई घबराहट नहीं हो रही थी। श्रोताओं की ओर न देखकर वह अपनी कापी के पन्ने पलटने लगी। आधी रात में उठकर आइने को अपनी कविता सुनाने के अलावा आजतक उसने किसी के सामने अपनी कविता नहीं पढ़ी थी। लेकिन आश्चर्य, इस समय उसे किसी तरह का डर या घबराहट नहीं हो रही थी। खूब धीरे-धीरे उसने पढ़ना शुरू किया :

"एक सपन से हो न सकूंगी उऋण···"

एक कविता पढ़ने पर सबने खूब जोर से तालियां बजायीं, लेकिन एक और सुनाने के लिए किसी ने अनुरोध नहीं किया। कापी बन्द कर वह उठ आई। बैठने के साथ ही अनिमेष ने बड़े उत्साह से कहा, "खूब बढ़िया! कविता भी अच्छी थी। नई लिखी है न? इसके पहले तो नहीं सुनाई थी?"

अपर्णा पर फिर डर और घबराहट हावी हो गई। उसके हाथ-पांव कांपने लगे और शरीर शिथिल हो गया। किसीकी ओर देखने का साहस नहीं हो रहा था। अनिमेष की बात का वह जवाब न दे सकी। केवल कापी पर अपनी अंगुली से रेखाएं खींचती रही।

दो कवि कार्यक्रम के बीच ही उठ खड़े हुए और बाहर जाने लगे। अनिमेष ने हाथ के इशारे से उन्हें बुलाया, और पास आने पर कहा, "कहां जा रहे हैं? बैठिये न।"

एक ने जवाब दिया, "बहुत जरूरी काम है, गये बिना चलेगा नहीं।"

दूसरे को अपर्णा की ओर घूरते देख अनिमेष ने परिचय करवाया, "ये हैं अपर्णा सरकार और आप हैं सुनील गांगुली और आप शरन मुखर्जी।"

पारस्परिक नमस्कार के बाद सुनील ने कुछ याद करते हुए, अपर्णा से कहा, "आपको मैंने कहीं देखा है—बहुत दिन पहले। आप नीलांजन की बहन तो नहीं हैं?"

"जी हां।"

"नीलांजन मेरे साथ कालेज में पढ़ता था। तब दो-एक बार आपके घर भी आया हूं। आपके छोटे भाई दीपांजन से अक्सर मुलाकात होती रहती है। नीलांजन तो इन दिनों पाइकपाड़ा की ओर कहीं रहता है न? उससे कहियेगा, कभी मेरे घर आये।"

अपर्णा ने अपराधी की तरह मुंह बनाकर कहा, "जी, कह दूंगी।" भैया से आजकल उसकी बातचीत नहीं होती, मुलाकात नहीं होती, यह वह बता नहीं सकी।

आयोजन की समाप्ति के कुछ ही पहले अनिमेष अपर्णा को लेकर निकल आया। आराम से निकलते हुए दोनों बस के अड्डे पर आये। शाम लगभग हो चुकी थी। धीमी मादक हवा बह रही थी। अनिमेष बहुत ही प्रसन्न था। बोला, "लौटते समय यदि टैक्सी से चलूं तो अस्वीकार नहीं करेंगी न?"

अपर्णा ने नम्रता से जवाब दिया, "क्यों, बस से भी लौटा जा सकता है। आपको तो दूसरी ओर जाना है।"

"दूसरी ओर जाना है तो क्या हुआ! आपको छोड़कर अपनी दिशा में चला जाऊंगा। अगर बस से ही चलना है तो चलिए, एक स्टाप आगे से चढ़ेंगे। यहां जान-पहचान के लोगों से मुलाकात हो सकती है।"

दोनों थोड़ी दूर तक चले थे कि अनिमेष ने फुर्ती से एक जाती हुई टैक्सी को रोक लिया और अपर्णा से कहा, "बैठिए।"

अपर्णा ने विस्मित होकर पूछा, "क्यों, बेकार टैक्सी बुला ली?"

अनिमेष ने सारे चेहरे पर हंसी बिखेरते हुए कहा, "मेरी खुशी। आप बैठेंगी या नहीं, बताइए।"

अपर्णा ने और विरोध नहीं किया। टैक्सी में जा बैठी।

टैक्सी वाले को चलाने को कहकर अनिमेष ने पूछा, "क्या अभी तुरन्त घर लौटना जरूरी है? थोड़ी देर कहीं बैठकर चाय नहीं पी जा सकती?"

अपर्णा बोली, "नहीं, आज रहने दीजिए।"

अनिमेष ने व्यथित होकर कहा, "जब भी कहता हूं, यही सुनने को

मिलता है, 'आज रहने दीजिए।' क्यों न आज थोड़ी देर कहीं बैठ जाय? हां, मेरे साथ चाय पीने में अगर आपको आपत्ति हो तो बात अलग है।"

"नहीं-नहीं, आपत्ति की बात नहीं है। देर हो जाने पर..."

अनिमेष ने बात काटी, "देर क्यों होगी? समय ही कितना लगेगा!"

"कहाँ चाय पीयेंगे?"

"यानी मेरा अनुरोध स्वीकार है। हां, एक बार आपके स्वीकार करने पर कहीं भी बैठकर चाय पी जा सकती है। चलिए गंगा के किनारे चलें, वहां एक बढ़िया रेस्तरां है।"

अपर्णा ने उसे रोकते हुए कहा, "नहीं, गंगा के किनारे जाने पर बहुत ज्यादा देर हो जायगी।"

"कोई देर नहीं होगी। घर पर ऐसा कौन-सा जरूरी काम है आपको?"

घर पर उसको टुलटुल न पाकर व्याकुल हो जायगी, यह बात अपर्णा उसे अपने मुंह से किसी भी तरह बता नहीं सकी।

अनिमेष ने टैक्सी वाले से गंगा के किनारे चलने के लिए कहा।

१५

सुबह-ही सुबह खबर तेजी से फैलती चली गई कि पिछली रात इस मुहल्ले में भयंकर दंगा हो गया। यह खबर अखबार में भी छपी थी। 'दो दलों में संघर्ष' शीर्षक के नीचे आठ-दस लाइनों की खबर थी। लेकिन मुहल्ले के आदमियों के मुंह से जो बातें सुनने को मिल रही थीं, वे अखबार में छपी खबर से भिन्न और अतिरंजित थीं।

पास वाले मकान की छत से अन्नपूर्णा मौसी, अपर्णा को बुलाकर आंखें

बड़ी-बड़ी करती हुई बोली, "पुनि, सुना तुमने, कल रात क्या हुआ ? हम लोगों को इधर पता ही नहीं चला। बम फटने की आवाज आयी थी, लेकिन वह तो आम बात हो गई है। सुन रही हूं कि नौ या दस आदमी मारे गये हैं।"

उसके बाद नौकरानी ने खबर दी, "उस मुहल्ले की बस्ती में (यद्यपि वह खुद दूसरी बस्ती में रहती है) खून की नदी बह रही है, पूरी बस्ती जलकर खाक हो गई है, तुमको कुछ पता नहीं चला, दीदी ?"

रिटायर्ड हेडमास्टर गिरीनबाबू रासमोहन से मिलने आये और पूरी खबर जानते हों, इस ढंग से बोले, "असल में मरे हैं पांच ही। दो राजनैतिक दलों का आपसी संघर्ष है। क्या स्थिति हो गई है देश की ! राज़नीति के नाम पर भाई-भाई की छाती में छुरा घोंप रहे हैं !"

रासमोहन स्तब्ध रह गये। कुछ देर बाद धीमे गले से पूछा, "बस्तियों में राजनीति का अड्डा है क्या ?"

बरामदे में अखबार खोलकर चाय पीते हुए दीपू बैठा था। उसे पता था कि बस्ती में किस बात को लेकर मारपीट हुई है। राजनैतिक विद्वेष नाम को भी नहीं था। एक तरह से उसी के कारण तो झगड़ा हुआ था। उसे बचाने के ही लिए तो निताई से धनंजय की ठन गई थी। यह कारण नहीं भी हो सकता है। लोगों को झगड़ा करने का कोई बहाना चाहिए। किसी भी बहाने दबा गुस्सा लावा की तरह फूट पड़ता है। दीपू के बहाने जो झगड़ा हुआ, बाद में उसमें और भी कारण जुड़ गये तो आश्चर्य नहीं। राजनैतिक कारण भी जुड़ जा सकते हैं। अखबार की तरफ वह देख जरूर रहा था, मगर पढ़ नहीं रहा था। सुबह की तीखी धूप उसके शरीर को झुलसाने लगी थी, मगर वह वहीं बैठा रहा। चाय पीना भी भूल गया। काफी दिन चढ़े उसकी नींद टूटी थी। सिर में अभी भी थोड़ा-थोड़ा दर्द हो रहा था।

साढ़े नौ बजे के लगभग नीचे से दीपू को किसी ने पुकारा। गंजी और पायजामा पहने हुए वह नीचे उतर आया। गरम सूट पर टाई बांधे इन्द्र-

जीत खड़ा हथेली से अपनी ठुड्डी रगड़ रहा था, जो उसके अत्यधिक चिंतित होने का लक्षण था।

रासमोहन दरवाजे के सामने खड़े होकर गिरीनबाबू से बातें कर रहे थे। दीपू इन्द्रजीत को अपनी बैठक में ले आया। पास ही दीपू के पिताजी खड़े हैं, इसका विचार न कर इन्द्रजीत ने सीधे प्रश्न किया, "तुम धनंजय के साथ कितनी देर तक थे ?"

अभी दीपू ने मुंह-हाथ नहीं धोया था, सोकर उठने के बाद की जड़ता पूरी तरह टूटी नहीं थी, दिमाग ठीक से काम नहीं कर रहा था। बोला, "क्यों ? मैं ज्यादा देर तक नहीं था।"

"मार-पीट के समय तुम कहां थे ?"

"मार-पीट ?"

"तुम्हें कुछ पता नहीं ?"

"हां, जानता हूं। कल धनंजय ने मार-पीट की है। मगर ऐसा तो वह करता ही रहता है।"

"कल रात तुम धनंजय के लिए मुझसे रुपये मांगने क्यों आये थे ?"

यह बात दीपू को अच्छी नहीं लगी। उसे एकदम गुस्सा आ गया। मगर पिताजी पास खड़े थे, इसलिए चिल्लाकर बोल नहीं सकता था। धीमी आवाज में उसने घुड़का, "मूर्ख, इतना भी नहीं समझ सकते ? उन लोगों ने मुझे जबरदस्ती भेजा था, तुम्हें बाहर बुला लाने के लिए। उनका इरादा तुम्हें पीटने का था। मैं तुमको बाहर लाना नहीं चाहता था। सोचा, कुछ रुपये देकर शायद उन्हें बहलाया जा सके।"

"वे पीटते मुझे ? तुमने मुझसे कहा क्यों नहीं ? देख लेता कि कौन है पीटनेवाला ? किसमें इतनी हिम्मत है !"

"अभी शेर हो रहे हो। रात में चुपचाप रुपये लाकर दे दिये।"

"मैंने समझा, तुम अपने लिए मांग रहे हो। मुझे क्या पता था कि उनकी ओर से आये हो !"

"तुम्हें अपने रुपयों का मलाल है। मैं उन्हें वापस कर दूंगा। बोलो,

कब चाहिए ?"

"रुपये की बात नहीं है, दीपू। घटना काफी गम्भीर है। एक गिलास पानी पिलाओ।"

दीपू खुद ही उठकर पानी ले आया। इन्द्रजीत से बात करने की उसकी तनिक भी इच्छा नहीं हो रही थी। इन्द्रजीत ने पानी पीकर कहा, "सुनो दीपू, रात मुहल्ले में दंगा हुआ। तीन आदमी जान से मारे गये। दो घरों में आग लगाई गई। एक आदमी के हाथ-पांव तोड़ दिये गए। मुहल्ले में पुलिस आ गई है।"

दीपू ने उसे रोकते हुए कहा, "यह सब मुझसे क्यों कह रहे हो ? तुम्हें सवेरे और कोई काम नहीं ? क्या आज दफ्तर नहीं जाना है ?"

इन्द्रजीत बोला, "तुम्हारे भले के लिए कह रहा हूं। रात तुम धनंजय के साथ थे। दंगाइयों के साथ देखे गये थे। पुलिस तुम्हें पकड़ ले जायगी। अच्छा है कि कुछ समय के लिए कहीं चले जाओ।"

"मैं कहीं नहीं जाऊंगा। यहीं रहूंगा। पुलिस मुझे पकड़ेगी क्यों ? मेरे खिलाफ उसके पास क्या सबूत है ?"

"मेरी बात मानो, दीपू। बेकार जिद मत करो। तुम्हारी ठुड्डी पर लगा यह ताजा घाव तुम्हारे खिलाफ सबसे बड़ा सबूत है। इससे भी संदेह पैदा हो सकता है और पुलिस तो संदेह में भी गिरफ्तार कर लेती है।"

"मुझे डराने की कोशिश मत करो।" दीपू ने चिल्लाकर कहा। रासमोहन और गिरीनबाबू बातें करते हुए रास्तेवाले मोड़ तक चले गये। अब दरवाजे के पास कोई नहीं था। दीपू ने आगे कहा, "यह जख्म तो गिरने से हो गया है। दंगे का इससे कोई संबंध नहीं।"

इंद्रजीत उठकर खड़ा हो गया। चलते-चलते बोला, "बच्चों-जैसी बातें मत करो। आग से खेलना अच्छा नहीं होता। मैंने तुम्हें सचेत कर दिया। आगे तुम जानो।" और वह जीना उतरकर चला गया।

इंद्रजीत के जाने के बाद दीपू दाढ़ी बनाने बैठा। दाढ़ी बनाने का

साबुन बहुत पहले ही खत्म हो गया था, इसलिए एक टुकड़ा कपड़े धोने के साबुन से ही किसी तरह काम चला रहा था। ठुड्डी के पास कट जाने से उसे बड़ी असुविधा हो रही थी, मगर दीपू किसी तरह साफ-सुथरा हो जाना चाहता था। स्ननघर में देर तक नहाता-धोता रहा। कल रात के सारे पाप और कलंक और सारी पीड़ा को वह धो डालना चाहता था।

नहाने के बाद धुली हुई पतलून-कमीज पहनकर वह धीरे-धीरे बस्ती की तरफ चला आया। सब-कुछ अपनी ही आंख देखना और अपने ही कान सुनना चाहता था। कल रात जहां घटना घटी, आज सुबह वहां पुलिस की भारी गारद लगी थी। आदमियों की भीड़ भी कम नहीं थी। तटस्थ दर्शक की तरह देखता और चलता हुआ वह भीड़ में दाखिल हो गया।

पूरी बस्ती के जलाये जाने की बात गलत थी, लेकिन कल के दंगे की छाप साफ दीख रही थी। कुछ घरों के दरवाजे-खिड़कियां टूटे पड़े थे और दीवारों पर बमों के दाग थे। मरनेवालों की संख्या बढ़ते-बढ़ते बारह तक पहुंच गई थी, जबकि सिर्फ एक आदमी मारा गया था। उसके नाम का पता भी चल गया—सुकुमार। उसे मुहल्ले में प्रायः सभी पहचानते थे। हाथ-पैर टूटने की बात भी गलत निकली। हां, एक आदमी को बहुत बुरी हालत में अस्पताल पहुंचाया गया था, उसका एक हाथ कट गया था। दीपू समझ गया कि वह निताई होना चाहिए। मगर उसका हाथ कल के झगड़े में नहीं कटा था, पहले ही कट गया था। गिरफ्तार हुए थे सिर्फ तीन आदमी। धनंजय उनमें नहीं था। वह फरार हो गया था। पुलिस ने उसकी खोज में कई जगह छापे मारे और तलाशियां ली थीं।

काफी देर तक दीपू वहां खड़ा रहा। भीड़ में पुराने लोग छंटते और नये आते रहे। दो-एक बार वह पुलिस के सामने भी पड़ा। एक इंस्पेक्टर से आंखें भी चार हुईं। लेकिन दीपू को डर नहीं लगा। कोई भी तो उसे संदेह की दृष्टि से नहीं देख रहा था। इंद्रजीत बेकार ही डरा गया था। हो सकता है, पुलिस को अभी पूरी खबर मिली हो। जिन्हें गिरफ्तार किया है उनसे तहकीकात करने पर बाद में पता चले कि उसीको लेकर पहले

मार-पीट शुरू हुई थी, और इसके लिए यदि उसे दोषी ठहराया जाय तो···

घर लौटकर उसने देखा कि पिताजी जल्दी से खा-पीकर कहीं बाहर चले गये। अपर्णा टुलटुल को खिला रही थी। वह भी खाने बैठ गया। लेकिन दो-तीन कौर खाते ही उबकाई आने लगी। मुंह धोकर फिर खाने बैठा तो फिर जी मिचलाया। अपर्णा उसकी पीठ पर हाथ फेरते हुए बोली, "क्या हुआ? इस तरह क्यों कर रहे हो?"

दीपू ने हैरान होकर कहा, "मैं कुछ खा नहीं पा रहा हूं। कल के हंगामे में सुकुमार की मौत हो गई। कभी वह मेरा मित्र रहा है। जब भी कौर मुंह में जाता है, उसका चेहरा सामने आ जाता है और उबकाई आने लगती है। क्यों दीदी, सुकुमार के घरवालों पर क्या बीत रही होगी? उसकी मां और छोटे-छोटे भाई-बहन की क्या दशा हो रही होगी!"

अपर्णा ने उसकी पीठ सहलाते हुए स्नेह-भरे स्वर में कहा, "जाओ, थोड़ी देर आराम कर लो। इन बातों को सोचकर परेशान होने से कोई लाभ नहीं। मैं दही मंगवा देती हूं, कुछ देर बाद थोड़ा दही और भात खा लेना।"

"नहीं, दीदी, आज मैं कुछ नहीं खा सकूंगा।"

१६

शांता की मां ने विस्मित होकर पूछा, "अरे दीपू, तुमको क्या हुआ?"

दीपू को अपनी ठुड्डी का जख्म याद नहीं रह गया था। उसने सोचा, मौसी मेरे मन की बात पूछ रही हैं। उसने आते ही बड़ी व्यग्रता से शांता

के बारे में पूछा था, जो उसके लिए अस्वाभाविक था! लेकिन आज वह निश्चय करके आया था कि साफ ही कहेगा। स्पष्ट स्वर में बोला; "कुछ भी तो नहीं हुआ। शांता कहां है?"

"तुम्हारे चेहरे पर यह घाव कैसा है?"

"ओः, घाव? ऐसे ही थोड़ा कट गया, कोई खास बात नहीं है।"

तभी रमेन बोले, "शांता मुंह-हाथ धोने गई है, आती ही होगी। बैठो, दीपू।"

बैठने के लिए कहा गया, लेकिन दीपू के बैठने के लिए कोई जगह नहीं थी, इसलिए वह रेलिंग के सहारे खड़ा रहा। बरामदे में एक अस्वाभाविक मौन छा गया था। शायद किसी पारिवारिक मसले पर चर्चा हो रही थी, जो दीपू के आ जाने के कारण हठात् थम गई या उसने आते ही शांता के बारे में पूछ लिया तो आगे बातचीत का सिलसिला न चल सका। दीपू को मन-ही-मन अकुलाहट होने लगी कि इस समय उसकी उपस्थिति यहां किसी को पसंद नहीं है। जो मौसी हमेशा उससे स्नेहपूर्वक वार्तालाप करती थीं, वे भी चुप बैठी थीं।

तभी शांता आ गई और दीपू के जी-में-जी आया। वह एकदम ताजा होकर आयी थी। आंखों की पलकें अभी भी भीगी हुई थीं, चेहरा धुलाई से निखर गया था। मानो एक युग के बाद देख रहा हो, इस तरह दीपू विस्मित होकर शांता को देखने लगा। सद्यः स्नाता शांता को उसने पहले कभी नहीं देखा था। इस समय चेहरे की आभा ही और प्रकार की दीख रही थी। वह एक हल्के नीले सिल्क की कीमती साड़ी पहने हुए थी। उसकी आंखों में भी जैसे दो नीलम जगमगा रहे थे।

शांता ने पूछा, "दीपूदा, कब आये?"

"अभी, थोड़ी देर हुई।"

जूते चरमराते हुए रमेनदा उठ गये और बोले, "शांता, तैयार हो गई न। तो चलो, निकला जाय। देर हो गई है।" फिर दीपू की ओर मुड़कर कहा, "दीपू, तुम बैठो। हम लोगों को एक निमंत्रण में जाना है। चाची,

शांता को लौटने में दस बजेगा, हो सकता है कि साढ़े दस भी बज जायं।"

दीपू की कुछ समझ में नहीं आया कि यह सब क्या हो रहा है। वह शांता से कुछ कहने ही जा रहा था कि वह रमेनदा के पीछे-पीछे जीना उतर गई। उसके जी में आया कि दौड़कर रमेनदा का रास्ता रोककर खड़ा हो जाय। लेकिन रमेनदा का इसमें क्या दोष? शांता उसको देखकर भी रुकी नहीं, चप्पल फटफटाती हुई नीचे उतर गई।

सुरभि ने एक बार आंख उठाकर दीपू की ओर देखा। मूक भाषा में वह दीपू से कुछ कहना चाह रही थी, लेकिन दीपू उस भाषा को समझ नहीं पाया। रेडियो बंद करके रिनी तस्वीर की तरह खड़ी थी। उसको इस तरह चुप दीपू ने कभी नहीं देखा था।

शांता की मां इतनी देर बाद बोलीं, "तुम्हारे घर का क्या समाचार है, दीपू? रमेनदा की कोई चिट्ठी आयी?"

मौसी की आंख की तरफ देखकर ही दीपू समझ गया कि केवल बात चलाने के लिए ही वे बात कर रही थीं। सहज स्वभाव की होने के कारण अपने मन का भाव छिपा नहीं पाती थीं। सूखे गले से किसी प्रकार उसने जवाब दिया, "नहीं।"

दीपू को लगा, उठकर चला जाना ही उचित है, लेकिन इस तरह अकस्मात् जाना भी तो अच्छा नहीं लगता। तभी रमेनदा ने ऊपर आकर उसे असमंजस की स्थिति से उबार लिया। बोला, "रूमाल यहीं छूट गया। यह पड़ा है कुर्सी के नीचे। रिनी, देना तो। और दीपू, क्या तुम घर जाओगे? हम लोग उसी तरफ जा रहे हैं, तुमको छोड़ देंगे।"

दीपू फौरन उठ खड़ा हुआ।

रमेन बोले, "ठीक है, शांता गाड़ी में ही है, तुम चलकर बैठो। मैं चाची से एक जरूरी बात करके अभी आया।"

किसी से बिना कुछ कहे दीपू सीढ़ी उतर गया। उसे क्षण-भर को लगा, रमेनदा कैसा विचित्र खेल खेल रहे हैं। कभी अपने को खलनायक नहीं होने देंगे, हर समय अपनी महत्ता को बनाये रखना चाहते हैं। अभी

उन्होंने जान-बूझकर शांता से बात करने का सुयोग दे दिया।

दीपू गाड़ी में नहीं बैठा। बाहर खड़े-खड़े ही आहिस्ते से बोला, "शांता, तुम कहां जा रही हो?"

चेहरे पर प्रसन्न मुस्कराहट बिखेरकर शांता ने जवाब दिया, "तुम्हारे पास से बहुत दूर चली जा रही हूं।"

दुःख नहीं, अपमान नहीं, गुस्सा नहीं—दीपू का चेहरा एकदम शांत और निर्विकार था। आज सब-कुछ उसे अविश्वसनीय लग रहा था, शायद इसीलिए विचलित नहीं हुआ। कुछ देर शांता के चेहरे को अपलक देखता रहा। उस चेहरे पर उसे कोई विषाद नहीं दिखाई दिया। वह भी हंसकर बोला, "वाह, दूर क्यों जाओगी! बताओ न कहां जा रही हो?"

"कहा तो, तुम्हारे पास से बहुत दूर जा रही हूं।"

"फिर वही बात! गुस्सा हो गई हो क्या?"

"मैंने तो गुस्सा कभी नहीं किया। क्या मुझे देखकर लगता है कि मैं गुस्से में हूं?"

"नहीं लगता। अब अगर मैं कहूं कि गाड़ी से उतरकर मेरे साथ चलो तो?"

दीपू की ओर ताकते हुए शांता ने दो बार सिर हिलाकर जवाब दिया, "नहीं।"

दीपू फौरन दरवाजा खोलकर भीतर आ गया। शांता आगेवाली सीट पर बैठी थी। वह चक्के के सामने आकर बैठ गया और क्लच पर अपना पैर रखकर उसने कहा, "क्या मतलब? तुम मेरे साथ नहीं चलोगी? अभी गाड़ी चलाकर तुमको ले जाता हूं।"

शांता के चेहरे पर हंसी की एक पतली-सी रेखा खिंच गई। बोली, "ठीक है, ले चलो, लेकिन कैसे ले जाओगे? तुम्हें तो गाड़ी चलाना आता नहीं और इसकी चाभी भी रमेनदा के पास है।"

"तुमसे बहुत सारी बातें करनी हैं, शांता! चलो मेरे साथ।"

"कैसे चल सकती हूं? रमेनदा के मित्र ने आज बुलाया है।"

"वे अकेले नहीं जा सकते ?"

"नहीं।"

"कल चली जाना।"

"उन लोगों से फिर मुलाकात नहीं हो सकेगी। वे परसों पोलैंड चले जायंगे।"

"न हो मुलाकात, हमें इससे क्या मतलब ?"

शांता ने इस बार थोड़ा परे हटते हुए कहा, "वे रमेनदा के खास दोस्त हैं, और मुझे देखना चाहते हैं।"

दीपू को गुस्सा आ गया। शांता जान-बूझकर तो उसे अपमानित नहीं कर रही है ? क्यों कहा उसने ऐसा ? वह भभक उठा, "देखना चाहते हैं के माने ? क्या अधिकार है रमेनदा के मित्र को ? और रमेनदा को ही क्या अधिकार है ?"

शांता ने एकटक उसकी ओर देखते हुए कहा, "दीपूदा, क्या सचमुच तुम्हें कुछ भी पता नहीं ? घरवालों ने तुम्हें नहीं बताया ?"

"कौन क्या बतायगा ?"

शांता अपने चेहरे पर हंसी का मुखौटा चढ़ाते हुए बोली, "अगले महीने की सत्रह तारीख को रमेनदा से मेरी शादी होने जा रही है।"

दीपू ने स्तब्ध होकर एक बार देखा कि रमेन आ तो नहीं रहे हैं। और दूसरे ही क्षण जोर का एक थप्पड़ शांता के कान पर जड़ दिया। फिर बोला, "तब से बेहूदा मज़ाक किये जा रही हो !"

रास्ते पर बेहिसाब भीड़ थी, और गाड़ी में अंधेरा। प्रकाश भी होता तो उस भीड़ में से देखने-सुनने की फुर्सत किसे थी ?

शांता ने मुंह नीचा किये कान सहलाते हुए कहा, "ओह, मेरा कर्ण-फूल खुलकर कहीं गिर गया है। ज़रा खोज दो ! निमंत्रण में जा रही हूं, तुमने बाल बिखेर दिये इस तरह।"

देखते ही नीले पत्थर का वह कर्णफूल मिल गया। दीपू ने उसे शांता की हथेली पर रख दिया। कान में पहनते हुए शांता बोली, "और मत

मार बैठना। बात लेकिन सच है। पिछले दो दिनों से केवल यही बात मेरे घर में हो रही है। मैंने सोचा था कि तुमको पता होगा।"

"शांता, मेरी तो कुछ भी समझ में नहीं आ रहा है। यह सब कैसे हो गया? एक दिन में मानो दुनिया ही पलट गई! तुमने हठात् रमेनदा से शादी करने की बात कैसे सोच ली?"

"उनसे शादी न करने का तुम कोई कारण बता सकते हो? तुम्हींने तो कितनी बार कहा है कि रमेनदा तुमसे ज्यादा गुणी और अच्छे आदमी हैं।"

"अच्छे आदमी होने से क्या शादी कर लेनी चाहिए?"

"नहीं करने का कारण भी तो तुम नहीं बता रहे हो।"

"शांता, समझ में नहीं आता, तुम क्या कह रही हो! मैं हमेशा तुम्हें अपनी समझता रहा। सच मानों, सब-कुछ छोड़ सकता हूं, पर तुमसे दूर नहीं रह सकता। न रमेन से तुम्हारी शादी हो सकती है और न तुम उसके साथ जा सकती हो। उतरो, हम कहीं चलकर बैठेंगे।"

"अब यह नहीं हो सकता।"

"क्यों नहीं हो सकता?"

"कह तो रही हूं कि नहीं हो सकता।"

"शांता, सुनो, इधर देखो, मेरी तरफ।"

तभी रमेनदा गाड़ी के पास आ गये। प्रसन्न होकर बोले, "ओह, बहुत देर हो गई मुझे। तुम लोग काफी तंग आ गये होगे। दीपू जरा खिसक कर बैठो। नहीं-नहीं, पीछे जाने की जरूरत नहीं है। हम सब यहीं समा जायंगे।"

रमेनदा ने गाड़ी चालू की ही थी कि दीपू बोल उठा, "रमेनदा, गाड़ी रोकिये जरा, मैं यहीं से चला जाऊंगा।"

शांता ने पूछा, "यहां से क्यों, घर नहीं जायंगे?"

रमेन ने पूछा, "तुम तो अम्हर्स्ट स्ट्रीट में रहते हो न? चलो, मैं तुम्हें घर छोड़ता जाऊंगा।"

सामने, नाक की सीध में, देखते हुए दीपू ने जवाब दिया, "नहीं, मैं अभी घर नहीं जाऊंगा।"

"जहां कहो, वहीं छोड़ दें।"

"मैं यहीं से चला जाऊंगा।" दीपू ने बेरुखी से कहा और गाड़ी से उतरकर बोला, "अच्छा, रमेनदा, चलूं।" फिर शांता की ओर देखकर बोला, "चलता हूं। फिर मुलाकात होगी।"

गाड़ी के जाते ही दीपू दो-एक पल आंखें मूंदे खड़ा रहा। आंख खोलने से पहले उसने सोचा, अब सब ठीक दिखाई देगा। इतनी देर में जो घटा, वह बिलकुल स्वप्न था, वास्तविकता नहीं। लेकिन आंख खोलने पर भी रमेनदा की गाड़ी, खिड़की में बैठी शांता और उसकी बाहर निकली हुई कोहनी दिखाई देती रही।

दीपू चुपचाप खड़ा सोचता रहा कि अब क्या करे। वह पूरा दिन पिछली रातवाली घटना को भूल नहीं पाया था। सोचा था कि शांता को पाकर सब ठीक हो जायगा। मगर अब कुछ दिन शांता को ही भूलने की कोशिश करनी होगी। कोई भी विशेष घटना होने पर दीपू उसी समय सोचकर रास्ता नहीं निकाल पाता, उसे समय चाहिए। लेकिन शांता को वह कैसे भुला पायगा ?

घर भी लौटा नहीं जा सकता और न किसी से कुछ बात ही की जा सकती है। वह बीडेन स्ट्रीट केपास खड़ा था, लेकिन यहां खड़ा रहना ठीक नहीं था। उसके मुहल्ले से वह जगह ज्यादा दूर नहीं थी। वह दौड़कर चलती हुई ट्राम में चढ़ गया। सवाल उठा कि कहां जाय। कालेज स्ट्रीट में उतरते ही दीपू बिना सोचे-विचारे हरिसन रोडवाली ट्राम में सवार हो गया। ट्राम हावड़ा पुल के ऊपर से गुजरी तो उसने मन-ही-मन कुछ निश्चय किया। स्टेशन पहुंचकर पता किया कि संबलपुर पैसेंजर घण्टे-भर में छूटेगी। उसकी जेब में बारह-तेरह रुपये थे। टिकट लेकर दीपू ट्रेन में ऊपरवाली सीट पर जाकर सो गया। किसी को उस पर संदेह है या नहीं, वह नहीं जानता फिर भी उसे लग रहा था, मानो वह भागा हुआ अपराधी हो !

१७

मुहल्ले के सत्ताईस लोगों को पुलिस पकड़कर ले गयी। अट्ठारह से लेकर पच्चीस वर्ष तक की उम्र के सभी लड़कों को पकड़ लिया गया था दीपू घर पर रहता या मुहल्ले में दिखाई देता तो वह भी जरूर पकड़ा जाता। जो इंद्रजीत सवेरे-सवेरे आकर दीपूको सावधान कर गया था, वह भी आठ बजे रात में पकड़ लिया गया। पुलिस महकमे में जान-पहचान होने से वह छूट गया, लेकिन कई घंटे हिरासत में रहना पड़ा और बांये हाथ पर रूल की मार के निशान उभर आये थे।

•

पहली रात दीपू घर नहीं लौटा तो रासमोहन ने यही समझा कि उसको भी पुलिस पकड़कर ले गई। जानते थे कि आखिर एक दिन चोर-गुंडों के गिरोह में वह शामिल हो जायगा। इसके अलावा उसका भविष्य और हो भी क्या सकता है। यह धारणा बनाकर उन्होंने चुप्पी साध ली थी।

अपर्णा ने दु:खित होकर जब कहा कि दीपू ने आज सारा दिन कुछ भी नहीं खाया, दुपहर को खाते समय उलटी कर दी तो रासमोहन ने उसकी बात पर कोई ध्यान नहीं दिया और बोले, "आज घर बेचने की रजिस्ट्री करानी थी, उसे अपने साथ चलने के लिए कहा था, मगर कोई पता नहीं। मेरे ये बेटे किसी काम के नहीं। जाने दो, मैं किसी की परवा नहीं करता! अकेला जाकर काम पूरा कर आया। एक महीने के अंदर यह मकान छोड़ देना पड़ेगा। अब भी सोच लो, मेरे साथ चलना चाहती हो या नहीं?"

अपर्णा मुंह नीचा किये ही बोली, "मौसा को खबर नहीं की जा सकती? वे दीपू को छुड़ाने की शायद कोई व्यवस्था कर सकें।"

रासमोहन क्रोधित हो उठे। बोले, "वंश का नाश करनेवाले इन

लड़कों के लिए तुम्हारे मौसा को बार-बार तंग करता रहूं मैं ? जैसे मेरी कोई मान-मर्यादा ही नहीं ! कुल के दीपक हैं न बेटे ! पढ़ने-लिखने में जितने तेज, काम-धाम में भी वैसे ही होशियार ! रुपयों के तोड़े कमाकर ला रहे हैं ! हुं ह् !"

इसके बाद पूरा एक दिन अपर्णा की पिताजी से बात नहीं हुई। रासमोहन सवेरे-सवेरे खाकर जो बाहर निकले तो रात बीतने पर ही लौटे। अपर्णा ने टुलटुल को स्कूल नहीं भेजा, सारा दिन घर पर ही रही। टुलटुल ने जरूर कई बार पूछा, "दीपू मामा कहां हैं ?"

उस दिन आधी रात को अंधड़ की तरह पैर पटकते हुए रासमोहन फिर चिल्ला उठे, "सांस रुक रही है ! सांस अटक गई ! पुनि ! पुनि ! तुम अपने मौसा को जल्दी बुलाओ !"

अपर्णा की गहरी नींद नहीं आती, जरा-सा खुटका सुनते ही जाग जाती है। पिताजी की आवाज सुनी तो हड़बड़ाकर उठी और उनके कमरे की ओर भागी। कमरे का दरवाजा भीतर से बंद था। धक्का देते हुए बोली, "क्या हुआ, बाबा ?"

बुरी तरह घबराये हुए रासमोहन रुंधे गले से कहते रहे, "सांस रुक गयी ! सांस रुक गयी ! कोरामिन ! कोरामिन !"

"दरवाजा तो खोलिये। दरवाजा बंद है !"

रासमोहन अंधे की तरह दरवाजे पर हाथ दौड़ाते रहे, लेकिन सिटकिनी खुल न सकी। बड़े कातर स्वर में चिल्लाते रहे, "दरवाजा खोल नहीं पा रहा हूं, पुनि, दरवाजा खोल नहीं पा रहा हूं ! मर गया, पुनि !"

"अपर्णा व्याकुल होकर दरवाजे पर धक्के देती और गुहारती रही, "बत्ती जला लीजिये, बत्ती जलाइये न !"

निःस्तब्ध रात में एक बंद दरवाजे के इस ओर पिता और उस ओर बेटी ! दोनों चिल्ला रहे थे, लेकिन उनकी चिल्लाहट कोई सुन नहीं रहा

था, किसी की नींद नहीं टूटी। अपर्णा सोचने लगी, चिल्लाकर पासवाले घर से किसी को बुला ले, क्योंकि पुराने समय के मजबूत दरवाजे को तोड़ना उसके वश का नहीं था। दरवाजे का सहारा लेकर रासमोहन खड़े थे, उनकी शक्ति चुक गई थी, दोनों पैर शिथिल हो गये थे। पर अवश होकर गिरने से पहले किसी तरह सिटकिनी हाथ में आ गई और उन्होंने उसे खोल दिया।

दरवाजा ठेल, रासमोहन के शरीर को लांघकर अपर्णा अंदर घुसी। बत्ती जलाकर कोरामिन की शीशी खोज पिता के पास आयी। रासमोहन जमीन पर चित् पड़े थे। चेहरा पीला पड़ गया था। आंखें दोनों खुली थीं। काली पुतलियां स्थिर, मानो उसी को देख रही हों।

अपर्णा कांप उठी और फफककर रो पड़ी। उस क्षण उसने अपने को नितांत असहाय अनुभव किया। उसके हाथ कांपने लगे, चम्मच में कोरा-मिन ढालना मुश्किल हो गया।

पहली बार सारा कोरामिन जमीन पर ढुलक गया, एक बूंद भी मुंह में न जा सकी। दूसरी बार जब अपर्णा चम्मच मुंह के पास ले गई तो रासमोहन ने खुद ही होंठ खोल दिये। अपर्णा का शरीर तब भी कांप रहा था, छाती के अंदर मानो कोई हथौड़ी पीट रहा हो। रासमोहन के विशाल भारी शरीर को उठाकर बिछौने तक ले जाना उसके बूते का नहीं था। सिर के पास बैठकर बालों में धीरे-धीरे अंगुलियां फिराती हुई पुकारने लगी, "बाबा! बाबा!"

दो-तीन मिनट बाद थोड़ा दम-में-दम आया रासमोहन तो धीरे-धीरे उठे और पूरी आंख खोलकर पूछा, "वह कहां गया?"

"कौन? किसकी बात कर रहे हैं? यहां तो और कोई नहीं था?"

"नहीं था माने? थोड़ी देर पहले ही वह मुझसे बात कर रहा था।"

"कौन आया था आपके पास?"

"दीपू था न यहां पर ? कहां चला गया ?"

"दीपू तो दो दिन से घर नहीं है।"

"नहीं है ? इतनी देर तक वह मुझसे झगड़ता रहा···मैंने निताई को ···सभी ने मुझे गलत समझा। लेकिन मैंने तो इस परिवार की भलाई के ही लिए किया। तुम्हारी मां भी मुझको गलत समझती हुई चल बसीं।"

"पिताजी, आपने शायद सपना देखा है। उठ सकेंगे ? अब कैसा लग रहा है ? मौसा को फोन कर दूं ?"

"नहीं, फोन करने की जरूरत नहीं।" रासमोहन धीरे-धीरे जमीन से उठकर फिर बिछौने पर आ गये।

अपर्णा बोली, "दरवाजा बंद क्यों किया था ? रात में दरवाजा खोल कर रखियेगा। कल एक हल्का बल्ब लगा दूंगी, वह सारी रात जलता रहेगा।"

रासमोहन बुदबुदाते रहे, "सपना देखा ? नहीं, सपना नहीं था। मेरे कमरे में खड़ा दीपू झगड़ा कर रहा था कि मैंने उसका घर-परिवार सब जलाकर राख कर दिया।"

"दीपू तो आपसे इस तरह कभी बात नहीं करता।"

"सचमुच वह लौटा नहीं अबतक ? तुमने ठीक से देखा है ? देखो तो, पासवाले कमरे में सो तो नहीं रहा है ?"

"नहीं, लौटा नहीं है। लौटने पर क्या मुझे पता नहीं चलता ?"

दूसरे दिन सवेरे से ही रासमोहन ने दीपू के नाम की रट लगा दी। मन की किसी परत में अपने छोटे बेटे के लिए ढेर सारा स्नेह दबा पड़ा था, वह मानो इस बार फूट पड़ा। नासमझ की तरह रासमोहन सबसे अपने बेटे को खोज लाने का अनुरोध करने लगे। अस्वस्थ होते हुए भी इधर-उधर भाग-दौड़ करने लगे।

दीपू का तो कहीं पता नहीं चला, लेकिन थाने-अस्पताल में खोज करते हुए रासमोहन को निताई की खबर मिल गई। पता चला कि शोचनीय

अवस्था में निताई पुलिस के पहरे में अस्पताल में भर्ती है।

दीपू न मिला और निताई का पता चल गया तो रासमोहन सहसा टूट-से गये। खाने की इच्छा ही जैसे मर गई। भीतर-ही-भीतर इतना गुस्सा था, वह सब पता नहीं कहां चला गया। दीवार की तरफ ताकते हुए आरामकुर्सी पर चुपचाप बैठे रहते। टुलटुल नाना के साथ खेलने आती तो उससे बातें करना भी भूल जाते। प्रश्नों का उत्तर देने के बदले उसके घुंघराले बालों को सहलाते-सहलाते उनकी आंखों में आंसू आ जाते।

एक बार रासमोहन टुलटुल से बोले, "टुलटुलि, जाओ, जरा अपनी मां को बुला लाओ। कहना, जल्दी बुलाया है।"

अपर्णा आकर दरवाजे में खड़ी हो गई। उसको देखकर रासमोहन शांत भाव से बोले, "आओ पुनि, भीतर आकर बैठो। तुमसे कुछ बातें करनी हैं।"

अपर्णा भीतर आकर एक कुर्सी पर बैठ गयी और पिता की तरफ देखने लगी। रासमोहन कुछ देर चुप सोचते रहे। एक बार अपर्णा की ओर ताककर निगाह फिर नीची कर ली और उसके बाद आहिस्ते-आहिस्ते बोले, "रनेन तो अब लौटेगा नहीं, तुम क्या करोगी? मैं भी चला जा रहा हूं।"

जवाब देते अपर्णा एक बार कांपी, फिर अपने को संयत करके बोली, "मैं कोई नौकरी कर लूंगी।"

"ढूंढ़ी है कहीं?"

"मिल ही जायेगी!"

रासमोहन दीवार की ओर ताककर बोले, "यही ठीक है। टुलटुल को भी तो बड़ा करना होगा। मैं अपने पैसे का एक हिस्सा तुम लोगों को भी दे जाऊंगा।"

रासमोहन के बात करने का ढंग देखकर तथा उनके गले की आवाज कुछ बदली हुई पाकर अपर्णा एक अनजान आशंका से भर उठी।

रासमोहन ने इस बार पूछा, "तुम्हारा भैया कहां रहता है, जानती

हो ? उसका घर देखा है ?"

"घर तो नहीं देखा, पर कहां रहते हैं, यह जानती हूं।"

"एक बार वहां जा सकती हो ? अपने भाई और भाभी को बुला लाओ। कहना, मैं उनको देखना चाहता हूं।" अपर्णा को चुप देखकर रासमोहन ने फिर कहा, "आज ही चली जाओ। यदि आना नहीं चाहें तो कहना कि मैंने क्षमा मांगी है। मेरा ही दोष है; मैं क्षमा मांगकर उसको बुला रहा हूं।"

अपर्णा इस बार घबराकर बोली, "नहीं-नहीं, आप इस तरह क्यों बोल रहे हैं ? भैया को बुलाते ही वे आ जायेंगे।"

रासमोहन उदास होकर बोले, "नहीं, आना नहीं चाहेगा। तुम जानती हो इस वंश के लोगों का गुस्सा ! मैं खुद जाता, लेकिन तबीयत ठीक नहीं है। तुम अपनी भाभी को बुला लाना, उसको ठीक से देखा नहीं है। हो सकता है, वह मुझसे बात भी नहीं करना चाहे।"

"नहीं बाबा, भाभी का स्वभाव बड़ा सरल है।"

"सरल होने से क्या हुआ, मान-अपमान का ख्याल तो होगा ही। एक दिन मैंने ही तो उसे अपमानित किया था।"

"दोष उन्हीं लोगों का था। क्या वे थोड़े दिन प्रतीक्षा नहीं कर सकते थे ? आपने डांटा, क्या इसीलिए भैया का घर छोड़कर चले जाना उचित था ?"

"अब इन बीती बातों को दुहराने से कोई लाभ नहीं। तुम उनको एक बार बुला लाओ। कहना, मैं अधिक दिन जीऊंगा नहीं। हो सकता है, फिर कभी मिलना ही न हो।"

उसके बाद रासमोहन घर से निकल पड़े। रास्ते में एक परिचित व्यक्ति ने उन्हें बुलाकर कुछ कहा, पर उन्होंने उसकी बात पर ध्यान नहीं दिया। एक टैक्सी बुलाकर ड्राइवर से कहा, "कैम्पबेल अस्पताल।"

सर्जिकल वार्ड के भीतर जगह नहीं मिली। इसलिए नीलरतन अस्पताल के बरामदे में बिस्तरे पर निताई को सुलाकर रखा गया था। पास ही

दो पुलिस के सिपाही बैठे पहरा दे रहे थे। उन्होंने रासमोहन को उसके पास जाने नहीं दिया। रासमोहन ने प्रार्थना के स्वर में कहा, "जाने दो भाई, उससे मिलना जरूरी है।"

अच्छी पोशाक न रहने पर भी रासमोहन के चेहरे पर पुराने जमाने का अभिजात्य रह गया था, सहज ही उनके सामने कोई बात नहीं कर सकता था। सिपाही बोले, "आप थाने से अनुमति लेकर आइये। उससे आपका क्या संबंध है, यह बताइये।"

रासमोहन उनकी उपेक्षा कर आगे बढ़ते हुए बोले, "अनुमति क्या लेना है, वह मेरा भाई है।"

सिपाही रुक गये और बोले,"मिलकर क्या करेंगे,वह बेहोश पड़ा है।"

रासमोहन इस बीच निताई के बिस्तरे तक पहुंच गये थे। दोनों सिपाही पास आकर खड़े हो गये और फिर कुछ सोचकर दोनों लौट गये।

निताई के सारे चेहरे और माथे पर पट्टियां बंधी थीं, हाथ पर पलस्तर चढ़ा था, तब भी वह पूरी तरह होश में था। उसकी दोनों आंखें लाल हो आयी थीं। फटे हुए धीमे गले से बोला, "रासू दा, आप आये हैं ?"

एक स्टूल खींचकर रासमोहन बैठ गये। निताई के कंधे के पास हाथ रखकर आत्मीयतापूर्वक बोले, "अंत में यही होना था तुम्हें। तुमसे कहा था न कि कलकत्ते में मत रहो।"

निताई ने जवाब में क्या कहा, कुछ समझ नहीं पाये। वे अपना कान उसके मुंह के पास तक ले गये। निताई के होंठ फिर हिले, लेकिन इस बार भी वे कुछ समझ नहीं सके। आंखों के इशारे से निताई ने उन्हें और पास आने के लिए कहा। एकदम उसके मुंह के पास अपना कान ले जाने पर सुना, "मेरी तकदीर !"

"तुमसे कहा था कि बिहार में किसी जगह छोटा-मोटा घर बना लो।"

निताई ने फिर कहा, "मेरी तकदीर !"

"कहां-कहां लगी है ? हाथ भी गया ?"

निताई ने अपना हाथ उठाने की चेष्टा की, मगर उठा न सका। माथा

हिलाकर कुछ कहने की चेष्टा में भी असफल रहा। फुसफुसाकर बोला, "ज्यादा नहीं लगी है, माथे में थोड़ी चोट आयी है।"

"ठीक होते ही पकड़ लिये जाओगे। सब पुरानी बातें सामने आ जायेंगी।"

निताई की दोनों आंखें मानो जल उठीं। बोला, "पकड़ में नहीं आऊंगा। मुझे कौन पकड़ेगा ?"

"इस बार भागोगे कैसे ?"

क्लांत होकर निताई कुछ क्षण सांस लेता रहा। आंखों के इशारे से उसने पानी के लिए कहा। आस-पास कहीं पानी दिखाई नहीं दिया। रास मोहन समझ नहीं पाये कि ऐसी अवस्था में जल पीना ठीक भी है या नहीं। उठकर एक सिपाही से कहा, वह पानी पीना चाहता है। सिपाही ने जवाब दिया, अभी नहीं। एक घंटे बाद ग्लूकोज दिया जायगा। लौटकर यह बात निताई से कही, तो उसकी दोनों आंखें निष्प्रभ हो गईं। किसी तरह बोला, "मुझको पकड़ नहीं पायेंगे, और अगर पकड़ भी लिया तो आपको कोई डर नहीं है, रासूदा ! आपकी बात किसी से कहूंगा नहीं।"

रासमोहन बोले, "अब मुझे उसका कोई डर नहीं रहा। मैं तुम्हारा मुकदमा लड़ूंगा। जितना भी रुपया लगे, दूंगा। मैंने अपना घर बेच दिया है। मेरे पास अभी बहुत रुपये हैं। मैं तुमको छुड़ा लूंगा। जो होना था, वह तो हो ही गया।"

"रासूदा, मैंने आपके साथ नमकहरामी नहीं की।"

"नहीं निताई, तुम मेरे भाई की तरह हो। तुम्हारा कोई दोष नहीं. दोष तो मेरा है। मैं तुम्हें बचाऊंगा। पुलिस से कहूंगा कि तुम्हारी दवा-दारू अच्छी तरह की जाय, रुपया जो भी लगे, मैं दूंगा।"

"मैं सात दिन के अंदर ही अच्छा हो जाऊंगा। रासूदा, मुझे कोई अफ़-सोस नहीं है। मैंने नमकहरामी नहीं की है। आपके बेटे को ही बचाने गया था। मैं आगे न आता तो वे लोग आपके लड़के को जान से मार डालते।"

"मेरा कौन-सा लड़का ?"

निताई की आवाज फिर मंद पड़ने लगी, लेकिन उसने किसी प्रकार बुदबुदाकर कहा, "दीपू।"

रासमोहन ने पूछा, "दीपू ? कहां हुआ था ऐसा ? कहां ?"

"उसी वस्ती में, जहां आप भी एक दिन···"

खट्-खट् जूते वजाती एक नर्स ने आकर कड़े शव्दों में रासमोहन को डांटा, "यह क्या ! आप इस तरह के रोगी से वात कर रहे हैं ? किसने आपको यहां आने दिया ?"

नर्स को अनसुना कर निताई के मुंह के पास अपना कान ले जाकर वोले, "निताई, वे सब गहने किसके पास हैं, जानते हो ? जितना भी रुपया लगे, उन गहनों को यदि छुड़ाकर लाया जा सके...कम-से-कम वह हार···"

निताई ने कुछ कहने के लिए होंठ हिलाये, लेकिन आवाज नहीं निकली। आंख की पुतलियां हिलकर रह गईं, कुछ कहना चाहता था, पर कह न सका।

रासमोहन उठते हुए वोले, "खैर, जाने दो। गहना न भी मिले तो कोई वात नहीं। जो गया, सो गया। सारा दोष मेरा ही है। निताई, तुमको जरूर वचाऊंगा। मुकदमा लड़कर तुम्हें छुड़ा लूंगा। देखना तुम।"

रासमोहन के जाने के दो घंटे वाद विस्तर से उठने की चेष्टा में निताई की सांस उखड़ गई।

१८

अपर्णा ने सोचा था, शुभ्रा उसको देखते ही खुशी से फूली नहीं समायेगी। आनंद में भरकर चिल्ला उठेगी। धड़धड़ाती नीचे उतर

आयेगी। अपर्णा ने इसी आशा में शुभ्रा की तरफ देखा था।

वरामदे में रेलिंग के सहारे शुभ्रा खड़ी थी। अपर्णा को दूर से आते हुए देख रही थी, उसी दिशा में ताक भी रही थी। अपर्णा के निकट आ जाने पर भी शुभ्रा में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। तटस्थ भाव से हंसते हुए उसने पूछा, "इस तरफ कहां जा रही हैं?"

अपर्णा अंदर-ही-अंदर लज्जित हो गई। इतने दिन गुस्सा करके भाई के घर नहीं आई, यह सभी जानते थे। आज खुद ही उसे आना पड़ा। जहां तक संभव हो सका, उसने सहज ढंग से कहा, "तुम्हीं लोगों के यहां आई हूं।"

"नीलांजनदा तो यहां हैं नहीं?"

"नहीं हैं? और भाभी?"

"वे भी नहीं?"

उसने अपर्णा से ऊपर आने के लिए भी नहीं कहा। लेकिन इस तरह रास्ते में खड़े होकर तो बात की नहीं जा सकती थी। क्या बच्चों की तरह पूछकर ही लौट जाना होगा? शुभ्रा यों अपरिचित की तरह व्यवहार क्यों कर रही है? अपर्णा उसको बचपन से ही उसे जानती है। वह फ्रॉक पहनकर दौड़ा करती थी और बात-बात में दीपू से झगड़ा कर लेती थी।

अपर्णा ने पूछा, "तुम लोगों का ज़ीना किधर है?"

"सीधी चली आइये। भीतर आकर दायीं तरफ।"

शुभ्रा ने अपनी पूरी गृहस्थी दो कमरों में जमा रखी थी। उसने अपना घर बड़े करीने से सजाया था। माधुरी जिस कमरे में रहती थी, अपर्णा उसी में जाकर बैठी। कमर में खोंसे हुए रूमाल को निकालकर उसने चेहरे का पसीना पोंछा और बोली, "भाग्य से तुमको बरामदे में देख लिया, नहीं तो जाने कितनी देर खोजती फिरती।"

"हां, इधर नंबर भी बड़े उलटे-सीधे पड़े हैं।"

"क्या हाल हैं तुम लोगों के? तुम्हारे पति से तो मेरा परिचय ही नहीं हुआ। वही शादी के दिन देखा था।"

शुभ्रा जानती है कि अपर्णा न तो उससे मिलने आई है और न उसका समाचार ही पूछा। यह सब औपचारिकता है। उसने भी औपचारिकता निभायी।

"ठीक हूं। आप सब तो अच्छे हैं न ?"

अपर्णा ने इस प्रश्न का कोई जवाब नहीं दिया।

शुभ्रा ने पूछा, "चाय तो पीयेंगी न, अपर्णादी ?"

"नहीं-नहीं, कुछ भी नहीं पीऊंगी। घर तो बहुत सुंदर सजाया है। भैया-भाभी का कमरा कौन-सा है ? भाभी कहां गई हैं ?"

"वह यहां नहीं है। जबलपुर चली गई, बहुत दिन हुए।"

"अपर्णा को इस समाचार की आशा नहीं थी, लेकिन फिर भी उसके चेहरे पर निराशा या आश्चर्य का भाव नहीं आया। अपने अभिजात्य के फलस्वरूप दूसरे के सामने वह अत्यधिक विस्मय या दुःख अथवा आनंद को प्रकाश में नहीं आने देती। कुछ देर चुप रहने के बाद उसने पूछा, "भैया कबतक लौटने वाले हैं ?"

"नीलांजनदा आजकल यहां नहीं रहते। खाने-पीने की दिक्कत थी, इसलिए किसी मित्र के साथ एक मेस में रहने लगे हैं।"

"पता जानती हो ?"

"मैं तो नहीं जानती, वे शायद जानते हों। उनसे पूछ रखूंगी।"

अपर्णा के लिए और कुछ पूछना शेष नहीं रहा। उठते हुए बोली, "अच्छा, शुभ्रा, अब चलूं।"

शुभ्रा चुप। उसने एक बार भी अपर्णा को रुकने-बैठने के लिए नहीं कहा।

अपर्णा को उसका रूखापन अखर गया। थोड़े अपमान का भी बोध हुआ। उसने चलते-चलते कहा, "भैया के नाम यदि एक पत्र लिखकर रख जाऊं तो रतनबाबू पहुंचा देंगे ?"

"कहकर देखूंगी। पता नहीं, नीलांजनदा से उनकी मुलाकात होती भी है या नहीं।"

"तो रहने दो।"

अपर्णा ने सोचा, पत्र पहुंचाने की बात कहना ठीक नहीं हुआ। वह दरवाजे तक पहुंच गयी थी। कुछ याद आते ही ठिठक गयी और बोली, "तुम्हें दीपू के बारे में कुछ पता है? कई दिनों से घर नहीं आया। कहां है, मालूम नहीं।"

"दीपू?" शुभ्रा ने इस तरह चेहरा बनाकर कहा, मानो जानती ही न हो। फिर घोर उदासीनता से बोली, "नहीं, मुझे उसके बारे में कुछ नहीं मालूम।"

"यहां आता तो रहता होगा।"

"हां, शायद कुछ दिन पहले आया था।"

"अच्छा शुभ्रा, चलूं।"

:

अपर्णा के सीढ़ी उतरते ही शुभ्रा ने अंदर से दरवाजा बंद कर लिया।

धीरे-धीरे चलकर अपर्णा एक बड़े रास्ते के मोड़ पर आकर खड़ी हो गई। मन दुःखित हो गया था। भैया से मुलाकात न हो सकी, यह भी मानो उसी का दोष था। बाबा ने कहा था, अपने भैया से कहना कि मैंने उससे क्षमा मांगी है। बाबा में इस तरह के परिवर्तन की कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। अपर्णा को थोड़ा भय लग रहा था। पर भैया से मुलाकात ही नहीं हुई। अगर इस समय दीपू रहता तो वह जैसे भी हो, भैया को ढूंढ़ निकालता।

सहसा उसे खयाल आया कि शांता को दीपू के बारे में जरूर पता होना चाहिए। इस उम्र के लड़के-लड़कियां भले ही माता-पिता या भाई-बहन को भूल जायं, मगर जिसको चाहते हैं, उसे एक क्षण के लिए भी नहीं भूलते, और हर बात बता देते हैं।

शांता का मकान उसे मालूम था। शादी के बाद रमेन के साथ शांता की मां को प्रणाम करने गई थी। शांता की दीदी सुरभि से उसकी मैत्री हो गयी थी। लेकिन इस समय वहां जाने में उसे डर लग रहा था। वह

मकान उसकी ससुराल वाले मुहल्ले में ही था। यदि किसी के सामने पड़ गयी तो लज्जा और अपमान से मरने-जैसा हो जायगा। काश कोई उसके साथ होता! थोड़ा सोचने के बाद उसने पासवाली दुकान से अनिमेष को फोन किया। इस समय वह प्रायः घर पर नहीं होता, परंतु आश्चर्य कि मिल गया।

टेलीफोन पाकर अनिमेष उछल पड़ा। पुलकित होकर बोला, "तुम यहां हो! मैं अभी आया। तुम्हीं को खोज रहा था। जूता पहनकर घर से निकला ही था कि सीढ़ी उतरते टेलीफोन की घंटी सुनायी दी। लगा कि तुम्हारा ही फोन होना चाहिए। भागा आया। तुम श्याम बाजार के मोड़ पर चली आओ, मैं ठीक सात मिनट में पहुंचता हूं।"

आते ही अनिमेष ने अपर्णा से कहा, "चलो, चाय की दूकान में बैठें। मैंने अभी तक चाय नहीं पी। तुम चाय पीओगी?"

"मैं पी चुकी हूं। आपको पीनी है, चलिये।"

"यह 'आप-आप' क्या लगा रखा है! एक प्याला तुम्हें भी पीना होगा।"

"आप कहां जा रहे थे?"

"फिर 'आप'! एक पत्रिका निकालने की बात चल रही है, वहीं जा रहा था। तुम भी चलो।"

"नहीं, आपके जाने की बात है, आप जाइये।"

"ओह, कैसे समझायें कि मैं तुम्हारा प्रोफेसर नहीं हूं, जिसे बराबर 'आप' कहकर बोलना होगा। अच्छा, चाय के साथ तुम क्या खाओगी? मुझे जोर की भूख लगी है।"

"मुझे भूख नहीं है।"

"भूख न होने पर भी तुम्हें मेरे साथ खाना होगा। अच्छा, तुमने इस बीच कोई कविता लिखी?"

"नहीं।"

"तुमसे कहा था न कि नियमित न लिखने से भाषा में रवानी नहीं आती। क्यों नहीं लिखी ?"

अपर्णा कैसे बताती कि कुछ दिनों से उसके घर में एक विचित्र उथल-पुथल-सी मची हुई है। एक तूफान सभी कुछ को नष्ट-भ्रष्ट करने के लिए बेताब हो रहा है। इतने दिनों में उसने किताब का एक पन्ना भी नहीं उलटा और न कोई कविता ही उसके मन में उमगी।

चाय की दूकान में बैठकर ऊपर वाली जेब से अनिमेष ने, कुछेक मुड़े हुए कागज निकाले, एक कागज पुनः जेब में रखकर बाकी अपर्णा को देते हुए थोड़ा झिझककर बोला, "दो-तीन नयी कविताएं लेता आया हूं। पढ़ोगी ? पढ़ते ही समझ जाओगी, किस पर लिखी हैं।"

अपर्णा ने हाथ बढ़ाकर कागज ले लिये। दो पन्नों पर दो कविताएं और एक छपा हुआ फार्म था। उसे खोलकर अपर्णा बोली, "यह भी कोई कविता है क्या ?"

अनिमेष ने फौरन वह फार्म लेकर जेब में रख लिया और दूसरा कागज निकालकर बोला, "नहीं, वह कुछ भी नहीं। यह एक और है।"

अपर्णा बोली, "यहां से उठकर चलें कहीं।"

"नहीं, बैठो। तुमसे बहुत बातें करनी हैं।"

"लेकिन यहां बड़ी गर्मी है।"

"पार्क में चलोगी ? नजदीक ही देशबंधु पार्क है।"

"नहीं, मैं आज कहीं नहीं जाऊंगी।"

"तब यहीं बैठें। चाय पीते हुए बातें करें। सुनो, तुमने क्या तय किया ?"

"किस बारे में ?"

"उस दिन जो कहा था।"

"मेरा तो तय ही है।"

"इस तरह अधिक दिन रहना ठीक नहीं। हम दोनों को जल्दी ही रजिस्ट्री कर लेनी चाहिए।"

अपर्णा की छाती धक्-से रह गयी, सिर से पांव तक वह एकबारगी सिहर उठी। उसके मन के अंदर की अनुभूति प्रसन्नता की नहीं, पीड़ा की थी। मेज के नीले रंग के शीशे की ओर देखते हुए उसकी आंखें दुखने लगीं।

अनिमेष अपनी धुन में मगन था। एक साथ तीन कविताएं लिखकर जाने किस लोक में पहुंच गया था। अपर्णा को देखकर भी नहीं देख रहा था। यदि देख पाता तो उसके चेहरे पर दूसरे ही भाव उसे दिखायी देते। उसने जेब से वह मुड़ा हुआ फार्म निकालकर अपर्णा की ओर बढ़ा दिया और कहा, "उस समय दिखाते हुए शर्म लग रही थी। लेकिन इसे लेकर मैं कई दिनों से घूम रहा हूं।"

"यह क्या है?"

"पढ़कर देखो। विवाह की रजिस्ट्री का नोटिस।"

"अभी यह सब नहीं!"

"अपर्णा, इस महत्त्व के मामले को और पीछे मत ठेलो। मैं चाहता हूं, जितना जल्दी संभव हो, हम दोनों की शादी हो जाय। तुम इस पर अपने दस्तखत कर दो।"

"अभी मैं कानून के अनुसार नहीं कर सकती। और मेरी बेटी का क्या होगा?"

"वह मेरी बेटी होगी। और कानून की चिंता छोड़ो। क्या वह जर्मनी से मना करने आयगा? कानूनी बाधा जो भी होगी, उसे मेरा मित्र विजन देख-समझ लेगा। तुम तो बस दस्तखत कर दो। हालांकि दस्तखत कर देने से ही सब-कुछ नहीं हो जाता, फिर भी मैं समझ लूंगा कि तुमने अपनी स्वीकृति दे दी है।"

"इस तरह, चाय की दूकान की मेज पर कहीं स्वीकृति दी जाती है! यह तो एक तरह का पागलपन···"

अनिमेष ने उसकी बात काटकर कहा, "पागलपन नहीं है और न जल्दबाजी में किया हुआ फैसला। कितनी रातें जागकर सोचता रहा

हूं, तुम कल्पना नहीं कर सकतीं।"

कहते-कहते वह सहसा चुप हो गया और अपर्णा की ओर एकटक देखते हुए बोला, "अरे, तुम्हें हो क्या गया है? चेहरा एकदम उतरा हुआ है। ठीक से बात भी नहीं कर पा रही हो। मैं कितना मूर्ख हूं कि तुम्हारी परेशानी की ओर अपनी धुन में ध्यान भी न दे पाया। बताओ, बताओ, क्या बात है?"

अपर्णा ने उमड़ते हुए आंसुओं को रोककर किसी तरह से कहा, "बड़ी मुसीबत में फंस गई हूं। थोड़ी मदद चाहिए।"

"यह हुई न कोई बात। बताओ, क्या मदद चाहिए। इस दुनिया में कोई भी काम ऐसा नहीं है, जो मैं तुम्हारे लिए न कर सकूं।"

"आज ऐसा कोई दिखाई नहीं देता, जिससे मदद मांग सकूं। छोटा भाई दीपू कई दिनों से घर नहीं लौटा। बड़े भाई कहां रहने चले गये, पता नहीं। बाबा उस दिन हठात् बीमार हो जाने के बाद विचित्र ढंग से बातें करने लगे हैं। घर बेचकर कहीं चले जाना चाहते हैं। समझ नहीं पा रही हूं कि ऐसे में मैं क्या करूं? ऐसा कोई नहीं, जिससे राय ले सकूं, जिस पर भरोसा कर सकूं, जो मेरे पास आकर खड़ा हो सके। एकदम अकेली और असहाय हो गई हूं। ऐसे में आई थी तुम्हारे पास।"

अनिमेष झटके से सीधा होकर बोला, "यह सब तुमने मुझसे पहले क्यों नहीं कहा?"

इतनी बात कर लेने के बाद अपर्णा की आंखों के कोनों में पानी भर आया, लेकिन उनके ढुलकने के पहले ही दो अंगुलियों से दाबकर उसने मुंह नीचा कर लिया। थोड़ी देर बाद मुंह उठाकर स्वाभाविक रूप से बोली, "मुझे बड़ी प्यास लगी है। बैरा को बुलाओ।"

●

अनिमेष थोड़ी दूर खड़ा रहा, अपर्णा ने शांता को पुकारा। वह नीचे उतरते ही बोली, "यह क्या, अपर्णादी? आइये, आइये, ऊपर चलिये!"

"आज नहीं। इधर से जा रही थी। सोचा, तुमसे···"

अनिमेष के पास लौटकर अपर्णा ने थके हुए स्वर में कहा, "बेटी न होती तो मैं भी आज अपने घर न लौटती। दिमाग में इतनी सारी बातें जमा हो गई हैं कि उन्हें सह नहीं पा रही हूं।"

१९

समुद्र के नीले रंग की तरल दीवार का रंग कोमल और उज्ज्वल। ऊपर से नीचे तक शीशे की काफी चौड़ी खिड़कियों से डलहौज़ी स्क्वायर के पोखरे का पानी दिखाई पड़ता है—हरापन लिये हुए गंदला पानी। पहले इसका नाम लालदीघी था। शाम को दफ्तरों की छुट्टी के समय डलहौज़ी के पेड़ों पर तोते आकर शोर मचाने लगते हैं। पता नहीं, पहाड़ी प्रदेश के इतने तोते कलकत्ते की भीड़-भड़क्केवाली जगह में क्यों चले आते हैं?

अभी दफ्तरों की छुट्टी नहीं हुई थी। रमेन खिड़की के पास खड़े होकर बाहर देख रहे थे। हमेशा पांच-छह बजे से पहले अपने काम को छोड़कर उन्हें दूसरी ओर देखने का अवकाश नहीं मिलता। आज अनायास ही उठकर खिड़की के पास आ गये थे। कई दिनों से अपने अंदर स्फूर्ति चंचलता का अनुभव कर रहे थे।

दफ्तर छोटा, लेकिन कम महत्वपूर्ण नहीं था। विभिन्न चीजों का विदेशों को निर्यात होता था। काफी बड़ा कारोबार था। मालिक गुजराती था और बंबई के दफ्तर का काम वही देखता था। रमेन यहां का सहायक जनरल मैनेजर और मालिक का छोटा भाई जनरल मैनेजर था, लेकिन नाम का ही। निर्यात की उन्नति के नाम पर केवल विदेशों में घूमता रहता, दफ्तर में छठे-छमाहे ही आता था। यहां का सारा काम रमेन देखता था।

काफी बढ़ गये थे। मेज पर साफ निशान बन जाता था।

काम निपटाकर रमेन उठ खड़े हुए। दफ्तर के दो-चार कर्मचारियों को आवश्यक निर्देश देकर पूरे रौब के साथ बाहर निकले। रमेन के पास गाड़ी और ड्राइवर था। पीछे का दरवाजा खोलकर उन्होंने दीपू को बैठने के लिए कहा और फिर खुद बैठ गये।

●

कंपनी से जो फ्लैट रमेन को मिला था वह एकदम नया था। दीवारों से अभी ताजी गंध आ रही थी। फर्नीचर सभी नया, कीमती और सुरुचि-पूर्ण था।

दीपू को कुर्सी दिखाकर रमेन ने कहा, "बैठो। घर अभी ठीक से सजाया नहीं गया है। एक सप्ताह में सब ठीक हो जायगा।"

एक हृष्ट-पुष्ट खानसामा भी था। उसे बुलाकर रमेन ने चाय और सैंडविच बनाने के लिए कहा और हाथ-पांव धोने के लिए गुसलखाने में चले गये। लौटकर नयी कमीज में बटन लगाते हुए बोले, "दीपू, तुम आये, सचमुच बहुत अच्छा लग रहा है। उस दिन हठात् गाड़ी से उतर पड़े थे, उसके बाद तुमसे भेंट ही नहीं हुई। मैं चाहता हूं, हमारी शादी के इन दिनों तुम यहीं रहो।

रमेन के नये घर में नई मेज पर दीपू ने फिर अपने नाखून से एक निशान बना दिया।

रमेन ने अपनी बात जारी रखी, "तुमने इस बात को शांति से मान लिया, यह अगर नहीं जान पाता तो हम दोनों..."

दीपू ने अचानक तेज स्वर में कहा, "मैंने बाहर जाकर खूब सोचा है, खासकर कल रात में। आप दोनों की यह शादी नहीं हो सकती।"

जवाब में रमेन व्यंग्य कर सकते थे कि तुम्हारे सोचने-न-सोचने पर दुनिया के काम निर्भर नहीं करते, लेकिन न उनकी स्वाभाविक प्रसन्नता में व्यवधान पड़ा, न उन्होंने कड़ा रुख अपनाया। केवल कोमल स्वर में भर्त्सना की, "छिः दीपू ! भावुक मत बनो। यह शादी रुक नहीं सकती।

मैं नहीं चाहता कि मेरे और तुम्हारे बीच गलतफहमी बनी रहे। हम दोनों एक दोस्त की तरह हैं और..."

रमेन की बात को बीच में ही काटकर दीपू जोर से हंसा और बोला, "आप समझ नहीं रहे हैं, रमेनदा, मेरे विरोध करने पर यह शादी हो नहीं सकती।"

इस बार रमेन थोड़ा हंसे और उन्होंने कहा, "मैं जानता हूं कि तुम शांता को बहुत चाहते हो। यह चाहना मधुर होते हुए भी इसे शादी तक पहुंचाना उचित नहीं। तुम अपने जीवन को लेकर प्रयोग कर सकते हो, लेकिन अपने साथ एक लड़की का जीवन तबाह करने का तुम्हें कोई अधिकार नहीं।"

दीपू हठात् खड़ा हो गया और बोला, "नहीं रमेनदा, आप भूल कर रहे हैं।"

रमेन ने स्नेहपूर्वक दीपू के कंधे पर दोनों हाथ रख दिये और नरमी से कहा, "मैं भूल नहीं कर रहा और न किसी के मन को ही दुखाना चाहता हूं।"

दीपू चीख पड़ा, "मेरे कंधे पर हाथ मत रखिये।" और बोलने के साथ ही रमेन के मुंह पर जोर का घूंसा मारा।

रमेन एक क्षण को लड़खड़ाये, लेकिन तुरंत अपने को संभाल लिया और दोनों हाथों से मुंह ढंक लिया। जब हाथ हटाया तो उनके चेहरे पर पीड़ा से अधिक विस्मय का भाव था। बोले, "यह क्या दीपू ! तुम ऐसा करोगे, यह तो मैंने कभी सोचा भी नहीं था। मैं मारपीट से नफरत करता हूं। तुम भी अवश्य नहीं चाहोगे कि मैं खानसामे को बुलाऊं।"

लज्जा से दीपू का चेहरा जरा-सा निकल आया। परिताप-भरे स्वर में उसने कहा, "छिः-छिः, यह मैंने क्या किया ! विश्वास मानिये, रमेनदा, ऐसा करने का कोई विचार मेरे मन में नहीं था। मैं माफी मांगता हूं। मेरे अंदर क्रोध उथल-पुथल मचा रहा है, इसीलिए ऐसा हो गया।"

"इस तरह का क्रोध अगर पालकर रखोगे तो तुम्हारे साथ किसी

प्रकार की बातचीत हो ही नहीं सकती।"

"मैं सचमुच बहुत ही लज्जित हूं, रमेनदा! दिमाग कैसे बेकाबू हो गया, कह नहीं सकता। आप पर गुस्सा करने का कोई कारण भी नजर नहीं आता।"

"मैं तुमसे खुलकर बातें करना चाहता हूं। तुम जानते ही हो कि शांता ने और मैंने कोई जोर-जबरदस्ती नहीं की है। मतलब यह कि जबरदस्ती समझाने की चेष्टा भी नहीं की। शादी के लिए शांता खुद राजी हुई है। माना कि तुम शांता को चाहते हो, लेकिन यह निरा मोह है, जवानी के पहले प्यार का उद्दाम रूप। शांता की जगह अगर कोई दूसरी लड़की पहले-पहल तुम्हारे जीवन में आती तो तुम उसे भी इसी तरह चाहते। लेकिन मेरे साथ ऐसी बात नहीं है। मुझे दुनिया की दूसरी कोई भी लड़की नहीं चाहिए। मैं केवल शांता को चाहता हूं। वर्षों तक सोचकर भी शांता की तरफ से मैं अपने मन को हटा नहीं सका हूं। तुमको पता नहीं, शांता की दीदी सुरभि से एक बार मेरी शादी की बात चली थी। मैंने स्वीकार नहीं किया, क्योंकि मेरी निगाह में सुरभि एकमात्र लड़की नहीं है। उम्र बढ़ने पर ही तुम समझ पाओगे कि यौवन के प्रथम प्रेम में और शादी में अंतर है। प्रेम दो लोगों के बीच का सौदा है, लेकिन शादी एक सामाजिक घटना है। जिस शादी से दोनों ओर के माता-पिता, आत्मीय-स्वजन खुश न हों, वह शादी सुखमय नहीं हो सकती, कम-से-कम हमारे देश में।"

"आपकी बात युक्तिसंगत हो सकती है, लेकिन मैं उसे मान नहीं पा रहा हूं। मनुष्य स्वार्थी है, और मैं भी स्वार्थवश कह रहा हूं कि शांता मेरी है। मैं जब नया जीवन शुरू करने की बात सोचता हूं, तो लगता है कि सबसे पहले शांता को अपनाना होगा। यहां अगर मैं हार गया तो जीवन में हर जगह हारता चला जाऊंगा।"

"तुमने फिर भावुकता की बातें शुरू कर दीं?"

"मैं भावुकता की बातें करने नहीं आया हूं। केवल आपको यह बताने आया हूं कि शांता के साथ आपकी शादी नहीं होगी।"

रमेन निरुपाय होकर थके स्वर में बोले, "दीपू, अब यह सब कहने से क्या फायदा? मान-सम्मान···सभी जान गये हैं। कहाँ तक छपने चला गया है। मेरा मान-सम्मान···"

आपके मान-सम्मान के लिए मैं अपना जीवन तो नष्ट नहीं कर सकता।" दीपू ने रमेन की वात काट दी।

"यह सब तुमने पहले क्यों नहीं बताया? कम-से-कम उस दिन ही बता दिया होता।"

दीपू चीख पड़ा, "इसलिए नहीं बताया कि उस दिन मौका नहीं था। आप किसी की परेशानी और मजबूरी को कैसे समझ सकते हैं।"

रमेन बड़बड़ा उठे, "मेरे सामने खड़े होकर चिल्ला रहे हो, लेकिन शांता की भी कोई इच्छा-अनिच्छा हो सकती है, यह जान लिया है?"

दीपू वोला, "उसकी इच्छा-अनिच्छा का कोई प्रश्न इसलिए नहीं उठता कि मैं जानता हूं, वह क्या फैसला करेगी।"

"क्या तुम उससे मिल आये हो?"

"नहीं, स्टेशन से सीधा उसके घर गया था। वह मिली नहीं तो आपके पास चला आया।"

"तो चलो, हम दोनों शांता के पास चलते हैं।"

शांता सीढ़ियां उतर रही थी। रमेन और दीपू को एक साथ देखकर स्तब्ध सीढ़ी पर खड़ी रह गई। दीपू की ओर उसने देखा या शायद नहीं भी देखा, लेकिन रमेन पर उसकी दृष्टि स्थिर होकर रह गई। आज वह काली साड़ी और काला ब्लाउज पहने हुए थी, शायद इसीलिए, रेलिंग के ऊपर टिका हुआ उसका हाथ वहुत गोरा लग रहा था।

दीपू के मन में आया कि दो-तीन वार में पूरी सीढ़ी पारकर शांता को पकड़ ले, नहीं तो वह शायद वेहोश होकर गिर पड़ेगी। यह आशंका भी हुई कि शांता ने अस्वीकार कर दिया तो? फिर तो जीने का कोई अर्थ ही न रह जायगा? तभी मन में आवाज उठी, नहीं, ऐसा नहीं हो सकता।

शांता के उन स्तब्ध क्षणों में दीपू का अनंतकाल समाहित हो गया था।

शांता दो-तीन सीढ़ी नीचे उतर आयी, तब भी उसने दीपू की ओर नहीं देखा, रमेन की ओर एकटक ताकती हुई सहज भाव से बोली, "रमेन-दा, काफी सोचकर देखा है, दीपू को छोड़कर मेरे लिए जीना संभव नहीं है। मुझे क्षमा करेंगे।"

बाद के कुछ ही मूक क्षणों में रमेन जैसे बूढ़ा हो गया। उसकी आंखें निष्प्रभ हो गईं, शरीर की सारी शक्ति चली गई। जैसे कोई बहुत दूर से बोल रहा हो, रमेन ने पूछा, "यह कैसे समझ पाई ?"

शांता ने रमेन का हाथ पकड़कर कहा, "आओ, ऊपर चलें। इधर कई दिनों तक दीपू कलकत्ते में नहीं था। कहां गया, यह भी मुझे पता नहीं था। तभी मैं समझ पाई कि दीपू से अलग रहकर किसी भी तरह अपने दिमाग को ठीक नहीं रख पाऊंगी। तुम्हें कष्ट ही देती।"

रमेन ने दीपू की ओर देखकर धीरे से कहा, "मैं तुम दोनों के बीच कभी बाधा नहीं बनूंगा। यदि किसी भी काम आ सका तो मुझे खुशी होगी।"

२०

टुलटुल का हाथ पकड़े अपर्णा ने विवेकानंद रोड के पासवाले एक मकान में प्रवेश किया। वहां उसने अपने से दस वर्ष अधिक उम्र की एक महिला से पूछा, "अनुभादी, कुछ खबर मिली ?"

अपर्णा को देखकर अनुभादी खिल गईं। बोलीं, "आ गईं ? बैठो ! मैं प्रेशर कुकर उतारकर आ रही हूं। आज यहीं खाना खाना।"

"नहीं, खाऊंगी नहीं।"

"अरे, बैठो तो। आज मैं मानूंगी नहीं।"

अनुभा ने हाथ पोंछते हुए हंसकर कहा, "सुनो, एक अच्छी खबर है। तुम्हें वह नौकरी मिल जायगी। इसी सप्ताह चिट्ठी मिलेगी। संस्कृत पढ़ा सकोगी न ?"

"संस्कृत तो मुझे आती ही नहीं।"

"अरे, घर पर थोड़ा पढ़-पढ़ा लेना। मिशनरी स्कूल की लड़कियों को संस्कृत पढ़ाना ही कितना होता है ! वहां बंगला और संस्कृत पढ़ाने के ही लिए तो रखी जाओगी।"

"अनुभादी, पढ़ा भी सकूंगी या नहीं ? कभी स्कूल में पढ़ाया तो है नहीं।"

"क्यों न पढ़ा सकोगी ? पहले-पहल सभी को थोड़ी दिक्कत होती है। एक-दो महीने में सब ठीक हो जायगा। इस स्कूल में तनख्वाह बड़ी अच्छी है। इसके अलावा टुलटुल को भी वहीं भर्ती करा सकोगी। इस तरह तुम्हारी समस्या काफी हद तक हल हो जायगी।"

"सुना है कि वहां तो सिर्फ एम० ए० पास को ही लिया जाता है।"

"स्कूल में पढ़ाने के लिए एम० ए० की क्या जरूरत है ? तुम बैठो, अनिमेष आता ही होगा। टुलटुल वहां क्यों खड़ी हो ? आओ, मेरे पास आ जाओ।"

आज रेडियो पर अनिमेष की कविता का प्रोग्राम था। उसकी बड़ी इच्छा थी कि अपर्णा के साथ बैठकर सुने। इसके लिए घर पर ही व्यवस्था की गई थी। अनुभादी ने सबके खाने का प्रबंध किया था। अपर्णा उनके साथ रसोईघर में चली गई।

अनुभा ने पूछा, "अनिमेष ने रमेनबाबू को चिट्ठी लिखी है, पता है न ?"

अपर्णा का चेहरा सफेद पड़ गया। सूखे गले से कहा, "नहीं, मुझे नहीं मालूम।"

"तुम्हारा एक देवर है दीनेन। उसी से पता लिया था। अनिमेष कह

रहा था कि तुम्हीं से चिट्ठी लिखवायेगा। लेकिन मैं राजी नहीं हुई। वह तुम्हारे लिए सम्मानजनक न होता। जिसने तुम्हें पांच-छः वर्ष में एक भी चिट्ठी नहीं लिखी, उसे तुम क्यों लिखोगी? अनिमेष ने भी स्वयं नहीं लिखा है, अपने एक वकील दोस्त से कानूनी चिट्ठी भिजवाई है।"

वकील से कानूनी चिट्ठी भिजवाने की बात अपर्णा को अच्छी नहीं लगी। धीमे गले से बोली, "अभी यह सब करने की क्या जरूरत थी?"

"इतने वर्ष तो निकल गये। और देर करके क्या होगा? अनिमेष बहुत उतावला हो उठा है। इसके अलावा उसकी और भी चिन्ताएं हैं।"

"मैं टुलटुल के बारे में सोच रही थी।"

"टुलटुल-जैसी लड़की को जो प्यार नहीं दे सके, वह मनुष्य नहीं। तुम उसकी चिंता मत करो। उसके भले के लिए भी ज्यादा देर न करना जरूरी है। बड़े होने पर उसके लिए तालमेल करना मुश्किल हो जायगा। अनिमेष बेचारा बचपन में ही मातृहीन हो गया था। उसके पिता ने फिर शादी कर ली। अनिमेष कह रहा था, "मैंने जिस तरह बचपन में दुःख झेला, टुलटुल को वैसा दुःख न होने दूंगा। तुम उससे इतने दिनों से मिलती रही हो, अबतक समझ ही गई होगी कि उसका स्वभाव कैसा है!"

"असल में मैं खुद ही अपनी व्यथा से उबर नहीं पा रही हूं।"

"मेरी बात ध्यान से सुनो। अनिमेष अच्छा लड़का है, मन का साफ-सुथरा। कविता लिखता है, कुछ हद तक लापरवाह है, जिम्मेदारी का भान भी कम ही होता है, लेकिन अंदर से सच्चा है। मैं इतना जानती हूं किजो कविता लिखता है, उसका मन एकदम सरल होता है। मन के अंदर कुटिलता रहने से किसी प्रकार की सृष्टि नहीं हो सकती!"

"अनुभादी, अभी तक मैंने बाबा से इस संबंध में कुछ नहीं कहा है।"

"क्यों नहीं कहा? कहना चाहिए था।"

"पता नहीं, बोलने जाती हूं तो गला रुंध जाता है। उनकी तबीयत भी ठीक नहीं है। हर वक्त बिछौने पर पड़े रहते हैं। बातें भी कम करते हैं, और हम लोगों को अपना मकान भी जल्दी ही छोड़ना होगा।"

"तुम इस तरह उदास मत रहा करो। खुश रहना चाहिए। काफी दिन अंदर-ही-अंदर घुलती रही हो।"

तभी अनिमेष अपने दो दोस्तों को लेकर आया। अनुभादी के पति भी थोड़ी देर बाद आ गये। लोगों के आ जाने से घर में काफी हलचल हो गई। अनिमेष में मानों अतिरिक्त प्राण-शक्ति आ गई थी—उत्साह में भरकर भाग-दौड़ करने लगा। अपर्णा को एक ओर ले जाकर उसने कहा, "यह देखो, रनेन बाबू की चिट्ठी आयी है। उन्हें कोई आपत्ति नहीं है। बात बड़े सलीके से मान ली गई है।"

चिट्ठी हाथ में लेते ही अपर्णा का सारा शरीर सिहर उठा। उसका खयाल था कि चिट्ठी उसको संबोधित करके लिखी गई होगी। लेकिन नहीं, अंगरेजी में छोटी-सी चिट्ठी थी, अनिमेष के वकील के नाम। रनेन ने लिखा था, मन से तथा हर तरह से प्रथम पत्नी के साथ उसका संबंध-विच्छेद काफी दिन पहले ही हो गया है। यदि कानूनन विच्छेद कीव्यवस्था हो तो वह सभी प्रकार से सहायता दे सकता है। अपर्णा यदि किसी और के साथ नया जीवन शुरू करना चाहे, तो उसने अग्रिम शुभकामना भी भेज दी थी। सारे पत्र में टुलटुल के बारे में एक शब्द भी नहीं लिखा था।

यही रनेन है! कितना खुशमिजाज आदमी था! उसे देखकर सोचा भी नहीं जा सकता था कि वह किसी के मन को पीड़ा भी दे सकता है। आश्चर्य, आदमी इतना बदल भी जाता है!

अपर्णा बोली, "मुझे डर लग रहा है।"

अनिमेष ने उत्तर दिया, "सो तो लगेगा ही। यह स्वाभाविक है। जीवन में जब नया परिवर्तन होने लगता है तो डर लगता ही है।"

अनिमेष के दोस्त ने फब्ती कसी, "अपर्णा से मिलकर अनिमेष कितना चुस्त हो गया है! बड़े ढंग से बोलने-चालने लगा है।"

बातें दूसरी तरफ मुड़ गईं और सब उनमें मशगूल हो गये। रेडियो की ओर किसी का ध्यान ही नहीं रहा। तब अपर्णा ही बोली, "आठ बज रहा है। प्रोग्राम शुरू हो गया होगा।"

अनिमेष ने अपर्णा की ओर कृतज्ञ दृष्टि से देखा। आठ बज रहा है, यह उसके अलावा किसी ने याद नहीं रखा। समय होते देख अनिमेष अंदर-ही-अंदर छटपटा रहा था, लेकिन अपना प्रोग्राम सुनने के लिए रेडियो खोलने की बात अपने ही मुंह से वह कैसे कहता ! मौके पर अपर्णा याद न दिलाती तो समय निकल जाता।

रेडियो पर अनिमेष का गला थोड़ा बदल गया था। उसकी पहली कविता का शीर्षक था 'तुम्हारे लिए'। अपर्णा आपादमस्तक भीग उठी। पूरे कविता-पाठ के दौरान वह सिर नीचा किये बैठी रही।

●

अपर्णा पिता से कह आई थी कि एक घंटे के अंदर लौटेगी, मगर लौटी नौ बजे। फिर भी रासमोहन ने देर से आने के बारे में कुछ नहीं कहा। केवल इतना पूछा, "उसकी कोई खबर मिली ?"

अपर्णा जानती थी, 'उसकी' यानी दीपू की। बोली, "नहीं।" थोड़ी देर चुप रहकर उसने कहा, "पिताजी, मुझे एक नौकरी मिल रही है।"

दीवार की ओर मुंह करके रासमोहन लेटे थे, उसी तरह बोले, महज बोलने के ही लिए, "अच्छा हुआ।" कहां मिली, किस तरह की नौकरी है, इस संबंध में उन्होंने कोई उत्सुकता नहीं दिखाई।

अपर्णा ने ही कहा, "एक स्कूल में नौकरी मिली है। अनुभादी ने खोज दी है।"

रासमोहन ने उसी उदासीनता से कहा, "अच्छी बात है।"

अपर्णा कुछ देर खड़ी रही। रासमोहन ने जब आगे कुछ नहीं कहा तो वह भी चुप हो रही।

दीपू उसी दिन घर लौटा, काफी रात बीते।

२१

बाहरवाला दरवाजा खुला था। दीपू आहिस्ते-आहिस्ते जीना चढ़कर ऊपर आ गया। उसके चेहरे पर अपराधी का-सा भाव था, लेकिन भीतर-ही-भीतर ऐसे आनंद से उच्छ्वसित हो रहा था कि आज इस दुनिया में सबके सामने नतमस्तक होकर क्षमा मांगते हुए भी उसे किसी तरह की हिचक न होती।

सीढ़ी के पासवाली खिड़की में झांककर दीपू ने धीमे गले से पुकारा, "दीदी, दीदी!"

अपर्णा के कमरे में प्रकाश हो रहा था। टुलटुल को सुलाकर अपर्णा सजिल्द कापी में कुछ लिख रही थी। दीपू के गले की आवाज सुनकर एकदम चौंक पड़ी। उसको लगा कि शायद गलत सुना है अथवा उसकी यह कल्पनामात्र है, उसे वास्तव में किसी ने पुकारा नहीं है।

खिड़की के पास आकर दीपू को देखते ही बोली, "अरे, तुम? आओ, अंदर आ जाओ।" फिर स्वयं कमरे से निकलकर डांटती हुई-सी बोली, "कहां थे इतने दिन? खबर तक नहीं की!"

दीपू ने बहाना किया, "क्या करता! ऐसी जगह चला गया था जहां आस-पास कोई डाकखाना ही नहीं था।"

"भारत में ऐसी कौन-सी जगह है, जहां से चिट्ठी नहीं भेजी जा सकती?"

"लिखने की सोच ही रहा था कि लौट आया।"

"पिताजी तब से तुम्हें खोज रहे हैं। कई जगह ढूंढ़ा। हम लोग चिंता करेंगे, यह भी तुमने सोचा था?"

दीपू निगाह नीची किये डांट सुनता रहा। कई बार उसे ऐसा लगा है कि इस दुनिया में किसी से उसका कोई संपर्क नहीं—पिताजी, मां, भैया, दीदी—ये सब केवल मानने के रिश्ते हैं। फिर भी जब कोई स्नेह से

भरकर डांटता है, प्रेम से प्रताड़ना करता है तो जाने क्यों उसका दिल भर आता है। अभी भी दिल भर आया।

"तुम खाकर आये हो?"

"हां।"

"सचमुच बताओ, नहीं तो खाने की व्यवस्था करूं। पाव-रोटी है।"

"नहीं दीदी, सचमुच खाकर आ रहा हूं। पिताजी सो गये?"

"नहीं, सोये नहीं हैं। जाओ, मिल आओ।"

"कल सुबह मिलूंगा। इतनी रात गये उनको परेशान करना ठीक नहीं।"

"जाओ-जाओ, अभी मिल आओ। पिताजी हर वक्त तुम्हारे ही बारे में सोचते रहते हैं। इसी सोच में रात को उन्हें नींद नहीं आती। चलो, मेरे साथ।"

कमरे में अंधेरा था, पर रास्ते से आनेवाले तिरछे प्रकाश में बिछौने पर रासमोहन का लंबा-चौड़ा शरीर निस्पंद पड़ा था।

दीपू ने पुकारा, "पिताजी!"

कोई उत्तर नहीं मिला।

दीपू ने पुनः अनुतप्त गले से पुकारा, "पिताजी, मैं अचानक बाहर चला गया था।"

इस बार भी उसे कोई जवाब नहीं मिला। दीपू ने धीरे से अपर्णा से कहा, "सो गये हैं। रहने दो अभी।"

"नहीं, सोये नहीं हैं। मैं बत्ती जला देती हूं। तुम पुकारो।"

बत्ती जलाने पर पता चला कि रासमोहन दीवार की ओर मुंह किये पड़े हैं। कुछ देर पहले अपर्णा उन्हें इसी तरह से सोये हुए देख गयी थी। बत्ती जलाने पर भी वे इस करवट नहीं हुए। सांस लेने के कारण छाती उठ-बैठ रही थी।

दीपू ने इस बार जोर से पुकारा, "पिताजी!"

मिजाज ठीक नहीं है, और बीमार शरीर लेकर ज्यादा गुस्सा करना हानि-प्रद होगा, इसलिए अपर्णा ने तय किया कि दो-एक दिन बाद ही उन्हें यह बात बतायेगी।

रासमोहन कहते रहे, "यह मकान जल्दी ही खाली करना होगा। मैं अब यहां नहीं रहूंगा। तुम लोग अपने रहने की व्यवस्था कर लो। चाहो तो कुछ दिनों के लिए अपने मौसा के पास रह सकती हो। मैं तुम लोगों को थोड़े-बहुत रुपये दे जाऊंगा। कुछ रुपये एक और आदमी को देना चाहता हूं। निताई सामंत उसका नाम है और मैं उसका बहुत ऋणी हूं। वह तो मर गया। चाहता हूं कि उसके परिवार को पांच हजार रुपये दे दूं। तुम लोगों को कोई आपत्ति तो नहीं?"

"हमको क्या आपत्ति हो सकती है।"

इसी समय दीपू कमरे में आया और रासमोहन चुप हो गये। दीपू से वे बात नहीं करते, यहां तक कि उसके रहने पर किसी और से भी बात नहीं करते।

दीपू ने पूछा, "पिताजी, मैंने पता लगाया है कि भैया अभी दुर्गापुर में हैं। मैं उनको लाने के लिए दुर्गापुर चला जाऊं?"

रासमोहन दीवार की ओर मुंह करके पड़े रहे, जवाब नहीं दिया। बुढ़ापे में पिता के यों बच्चों की तरह रूठने का कोई मतलब दीपू की समझ में नहीं आता। उसने ऐसा क्या अपराध किया है कि पिताजी बच्चों की तरह रूठ गये हैं और बात ही नहीं करते?

दीपू को गुस्सा भी आता। कभी सोचता कि क्यों न पिताजी के पांव पकड़कर क्षमा मांग ले और उनको मना ले? लेकिन इस तरह की नाटकीयता उसके बस की बात नहीं। अन्त में पिताजी के इस आचरण को एक बड़ी बीमारी का ही लक्षण समझकर दीपू अपने डाक्टर मौसा को टेलीफ़ोन करने चला गया।

दोपहर को डाक्टर मौसा अपने परिवार के साथ रासमोहन को देखने

आये। रासमोहन उनसे बातें करने के लिए बिछौने पर उठकर बैठे और नैनीताल जाने के लिए पहले दर्जे का आरक्षण कराने की बात करते रहे। दीपू दरवाजे के पास खड़ा सुन रहा था। लेकिन जैसे ही वह कमरे में आया, रासमोहन चुपहो गये। तब वह कमरे में से निकल आया। पिताजी के इस तरह के बचपने को वह अपने मौसा के निगाह में लाना नहीं चाहता था। अपने कमरे में जाकर दीपू को रुलाई आ गई। पिताजी ऐसा क्यों कर रहे हैं? उस रात निताई से दीपू की मुलाकात हुई थी। क्या यह बात पिताजी जान गये हैं?शायद समझ रहे हों कि दीपू को वह सबकुछ मालूम हो गया है, और इसलिए वह अपने पिता को क्षमा नहीं कर सकेगा।

यह मकान छोड़ ही देना होगा, इसलिए दीपू अपनी चीजें समेटने लगा। मकान छोड़ने के बादकहां जायेगा, यह उसने अभी तय नहीं किया है। जहां भी जाना होगा, चला जायेगा, अभी से चिन्ता करने की क्या जरूरत है?

दोपहर में दीपू को सहसा नींद आ गई। जागा तो छ: बज चुके थे।

बाहर अंधकार फैल गया था। नौकरानी कब की चाय रख गई थी, पुकारा भी होगा, पर वह उठा नहीं। ठंडी होकर चाय पानी हो गई थी।

दीपू ने उठ कर तय किया कि आज वह शान्ता से मिलेगा। इन चार दिनों में वह एक बार भी उससे नहीं मिला था, केवल टेलीफोन पर दो बार बातें हुई थीं। दीपू ने स्नान किया और धुला हुआ पतलून-कमीज पहना।

सीढ़ी पर जूते की थप-थप आवाज करते हुए दीपू प्रसन्न मन उतरने लगा। हठात् बाहरी दरवाजे की ओर निगाह जाते ही उसके अन्दर झन् की आवाज के साथ कुछ कांप गया। दरवाजे का एक पल्ला खुला और दूसरा उढ़काया हुआ था। बाहरी दरवाजे के पासवाली बत्ती भी नहीं जलाई गई थी। बगल के मकान की खिड़की से रोशनी का टुकड़ा आकर फर्श पर पड़ रहा था। यह एकदम अस्वाभाविक तो नहीं था, ऐसा कई बार हो जाता था। लेकिन आज सब मिल कर ऐसा लग रहा था,

मिजाज ठीक नहीं है, और बीमार शरीर लेकर ज्यादा गुस्सा करना हानिप्रद होगा, इसलिए अपर्णा ने तय किया कि दो-एक दिन बाद ही उन्हें यह बात बतायेगी।

रासमोहन कहते रहे, "यह मकान जल्दी ही खाली करना होगा। मैं अब यहां नहीं रहूंगा। तुम लोग अपने रहने की व्यवस्था कर लो। चाहो तो कुछ दिनों के लिए अपने मौसा के पास रह सकती हो। मैं तुम लोगों को थोड़े-बहुत रुपये दे जाऊंगा। कुछ रुपये एक और आदमी को देना चाहता हूं। निताई सामंत उसका नाम है और मैं उसका बहुत ऋणी हूं। वह तो मर गया। चाहता हूं कि उसके परिवार को पांच हजार रुपये दे दूं। तुम लोगों को कोई आपत्ति तो नहीं?"

"हमको क्या आपत्ति हो सकती है।"

इसी समय दीपू कमरे में आया और रासमोहन चुप हो गये। दीपू से वे बात नहीं करते, यहां तक कि उसके रहने पर किसी और से भी बात नहीं करते।

दीपू ने पूछा, "पिताजी, मैंने पता लगाया है कि भैया अभी दुर्गापुर में हैं। मैं उनको लाने के लिए दुर्गापुर चला जाऊं?"

रासमोहन दीवार की ओर मुंह करके पड़े रहे, जवाब नहीं दिया। बुढ़ापे में पिता के यों बच्चों की तरह रूठने का कोई मतलब दीपू की समझ में नहीं आता। उसने ऐसा क्या अपराध किया है कि पिताजी बच्चों की तरह रूठ गये हैं और बात ही नहीं करते?

दीपू को गुस्सा भी आता। कभी सोचता कि क्यों न पिताजी के पांव पकड़कर क्षमा मांग ले और उनको मना ले? लेकिन इस तरह की नाटकीयता उसके बस की बात नहीं। अन्त में पिताजी के इस आचरण को एक बड़ी बीमारी का ही लक्षण समझकर दीपू अपने डाक्टर मौसा को टेलीफोन करने चला गया।

दोपहर को डाक्टर मौसा अपने परिवार के साथ रासमोहन को देखने

आये। रासमोहन उनसे बातें करने के लिए बिछौने पर उठकर बैठे और नैनीताल जाने के लिए पहले दर्जे का आरक्षण कराने की बात करते रहे। दीपू दरवाजे के पास खड़ा सुन रहा था। लेकिन जैसे ही वह कमरे में आया, रासमोहन चुप हो गये। तब वह कमरे में से निकल आया। पिताजी के इस तरह के बचपने को वह अपने मौसा के निगाह में लाना नहीं चाहता था। अपने कमरे में जाकर दीपू को रुलाई आ गई। पिताजी ऐसा क्यों कर रहे हैं? उस रात निताई से दीपू की मुलाकात हुई थी। क्या यह बात पिताजी जान गये हैं? शायद समझ रहे हों कि दीपू को वह सबकुछ मालूम हो गया है, और इसलिए वह अपने पिता को क्षमा नहीं कर सकेगा।

यह मकान छोड़ ही देना होगा, इसलिए दीपू अपनी चीजें समेटने लगा। मकान छोड़ने के बाद कहां जायेगा, यह उसने अभी तय नहीं किया है। जहां भी जाना होगा, चला जायेगा, अभी से चिन्ता करने की क्या जरूरत है?

दोपहर में दीपू को सहसा नींद आ गई। जागा तो छः बज चुके थे।

बाहर अंधकार फैल गया था। नौकरानी कब की चाय रख गई थी, पुकारा भी होगा, पर वह उठा नहीं। ठंडी होकर चाय पानी हो गई थी।

दीपू ने उठ कर तय किया कि आज वह शान्ता से मिलेगा। इन चार दिनों में वह एक बार भी उससे नहीं मिला था, केवल टेलीफोन पर दो बार बातें हुई थीं। दीपू ने स्नान किया और धुला हुआ पतलून-कमीज पहना।

सीढ़ी पर जूते की धप-धप आवाज करते हुए दीपू प्रसन्न मन उतरने लगा। हठात् बाहरी दरवाजे की ओर निगाह जाते ही उसके अन्दर झन् की आवाज के साथ कुछ कांप गया। दरवाजे का एक पल्ला खुला और दूसरा उड़काया हुआ था। बाहरी दरवाजे के पासवाली बत्ती भी नहीं जलाई गई थी। बगल के मकान की खिड़की से रोशनी का टुकड़ा आकर फर्श पर पड़ रहा था। यह एकदम अस्वाभाविक तो नहीं था, ऐसा कई बार हो जाता था। लेकिन आज सब मिल कर ऐसा लग रहा था, मानो

शोक का ही दृश्य हो। कोई शारीरिक पीड़ा न होते हुए भी दीपू की छाती में जोर से दर्द होने लगा। वह धड़धड़ाता हुआ ऊपर की ओर भागा।

रासमोहन के कमरे में अभी तक किसी ने बत्ती नहीं जलाई थी। वे करवट लेकर सो रहे थे। उन्हें इस तरह लेटे देख दीपू के मन में बड़ी ममता जाग उठी। आस-पास में कोई था नहीं। वह उनके पास जाकर आसानी से क्षमा मांग सकता था। बिछौने के एकदम करीब जाकर बोला, "पिताजी, आप नैनीताल अकेले जायेंगे? कहिए तो आप को पहुंचा आऊं?"

कोई उत्तर नहीं मिला।

इस बार दीपू की आवाज कांप गयी। बोला, "यदि आप चाहें तो वहां आपके साथ रह भी सकता हूं। इतनी दूर आप अकेले कैसे रहेंगे!"

इस बार भी कोई उत्तर न पाकर दीपू ने रासमोहन के शरीर पर हाथ रखा। हाथ रखते ही उसका सारा शरीर कांप उठा। पिता का शरीर बर्फ की तरह ठण्डा हो गया था।

मृत्यु का पता लगाने में देर नहीं लगती। दिल कड़ा करके उसने पहले कमरे की बत्ती जलाई, हाथ उठा कर नब्ज देखी, नाक के पास हाथ देकर सांस का पता किया। दीपू यह सब जानता था। उसे विश्वास हो गया कि पिताजी की मृत्यु हो चुकी है। फिर भी डाक्टर बुलाना जरूरी था। शायद कोई आशा बाकी हो।

वह दौड़कर कमरे से निकला और एक ही सांस में सारी सीढ़ियां उतर गया। टुलटुल को लेकर अपर्णा अभी पार्क से घूमकर लौटी थी। दीपू ने चिल्ला कर कहा, "दीदी, पिताजी के पास जाओ। मैं डाक्टर को लेकर अभी आता हूं।"

उसके बाद के दो घण्टों में दीपू ने वही किया, जो आमतौर पर किया जाता है। डाक्टर के निराश होकर लौट जाने के बाद यहां-वहां भागकर उसने अपने आत्मीय-स्वजनों को खबर की। देखते-ही-देखते उनके मकान

के सामने चार-पांच गाड़ियां आकर खड़ी हो गईं। जिन लोगों से काफी समय से कोई संपर्क नहीं रहा था, मृत्यु की खबर पाकर वे भी आ गये। दुर्गापुर फोन करने पर भी नीलांजन नहीं मिले। उनकी पार्टी के दफ्तर से पता चला कि वे वहां से भी किसी गांव में चले गये हैं। इतनी जल्दी उनसे सम्पर्क करना सम्भव नहीं था। दीपू किसी काम से बाहर भागता, फिर लौटकर सलाह-मशविरा के लिए स्वजनों के बीच आ जाता। पिताजी के मृत मुंह की ओर देखने का समय भी उसे नहीं मिल रहा था।

२२

कोरी धोती और आसन छोड़कर बहुत दिनों के बाद आज कमीज-पतलून में दीपू बाहर निकला था। ट्राम-बस पर वह सवार नहीं हुआ। क्रीक रोड से निकल कर सर्कुलर रोड से होते हुए मानिकतल्ला जाने के लिए सियालदह की ओर पैदल चल पड़ा। लम्बा दुबला-पतला शरीर, साफ कमीज-पतलून कीचड़ से बचाकर वह धीरे-धीरे चल रहा था। रास्ते पर बहुत लोग थे, लेकिन वह नितांत अकेला मन के एकाकीपन में सड़क-सड़क चलता रहा। कई दिनों के बाद वह आज शान्ता से मिलेगा।

हठात् झमाझम करती वर्षा शुरू हो गई। रास्ते पर भाग-दौड़ मच गई। लोग भाग-भागकर किसी बरामदे में या दुकान के नीचे खड़े हो गये। सामान बेचने वाले पटरियों पर अपने-अपने सामान को सम्भालने में व्यस्त हो गये। कबूतरों का एक झुंड उड़कर जिस ओर जा रहा था, सहसा वर्षा आरम्भ होने के कारण फुर्ती से पलटकर वह दूसरी दिशा में तेजी से उड़ने लगा। रास्ता प्रायः सुनसान हो गया। लेकिन दीपू और शान्ता रुके नहीं।

शोक का ही दृश्य हो। कोई शारीरिक पीड़ा न होते हुए भी दीपू की छाती में जोर से दर्द होने लगा। वह धड़धड़ाता हुआ ऊपर की ओर भागा।

रासमोहन के कमरे में अभी तक किसी ने बत्ती नहीं जलाई थी। वे करवट लेकर सो रहे थे। उन्हें इस तरह लेटे देख दीपू के मन में बड़ी ममता जाग उठी। आस-पास में कोई था नहीं। वह उनके पास जाकर आसानी से क्षमा मांग सकता था। बिछौने के एकदम करीब जाकर बोला, "पिताजी, आप नैनीताल अकेले जायेंगे ? कहिए तो आप को पहुंचा आऊं ?"

कोई उत्तर नहीं मिला।

इस बार दीपू की आवाज कांप गयी। बोला, "यदि आप चाहें तो वहां आपके साथ रह भी सकता हूं। इतनी दूर आप अकेले कैसे रहेंगे !"

इस बार भी कोई उत्तर न पाकर दीपू ने रासमोहन के शरीर पर हाथ रखा। हाथ रखते ही उसका सारा शरीर कांप उठा। पिता का शरीर बर्फ की तरह ठण्डा हो गया था।

मृत्यु का पता लगाने में देर नहीं लगती। दिल कड़ा करके उसने पहले कमरे की बत्ती जलाई, हाथ उठा कर नब्ज देखी, नाक के पास हाथ देकर सांस का पता किया। दीपू यह सब जानता था। उसे विश्वास हो गया कि पिताजी की मृत्यु हो चुकी है। फिर भी डाक्टर बुलाना जरूरी था। शायद कोई आशा बाकी हो।

वह दौड़कर कमरे से निकला और एक ही सांस में सारी सीढ़ियां उतर गया। टुलटुल को लेकर अपर्णा अभी पार्क से घूमकर लौटी थी। दीपू ने चिल्ला कर कहा, "दीदी, पिताजी के पास जाओ। मैं डाक्टर को लेकर अभी आता हूं।"

उसके बाद के दो घण्टों में दीपू ने वही किया, जो आमतौर पर किया जाता है। डाक्टर के निराश होकर लौट जाने के बाद यहां-वहां भागकर उसने अपने आत्मीय-स्वजनों को खबर की। देखते-ही-देखते उनके मकान

के सामने चार-पांच गाड़ियां आकर खड़ी हो गईं। जिन लोगों से काफी समय से कोई संपर्क नहीं रहा था, मृत्यु की खबर पाकर वे भी आ गये। दुर्गापुर फोन करने पर भी नीलांजन नहीं मिले। उनकी पार्टी के दफ्तर से पता चला कि वे वहां से भी किसी गांव में चले गये हैं। इतनी जल्दी उनसे सम्पर्क करना सम्भव नहीं था। दीपू किसी काम से बाहर भागता, फिर लौटकर सलाह-मशविरा के लिए स्वजनों के बीच आ जाता। पिताजी के मृत मुंह की ओर देखने का समय भी उसे नहीं मिल रहा था।

२२

कोरी धोती और आसन छोड़कर बहुत दिनों के बाद आज कमीज-पतलून में दीपू बाहर निकला था। ट्राम-बस पर वह सवार नहीं हुआ। क्रीक रोड से निकल कर सर्कुलर रोड से होते हुए मानिकतल्ला जाने के लिए सियालदह की ओर पैदल चल पड़ा। लम्बा दुबला-पतला शरीर।, साफ कमीज-पतलून कीचड़ से बचाकर वह धीरे-धीरे चल रहा था। रास्ते पर बहुत लोग थे, लेकिन वह नितांत अकेला मन के एकाकीपन में सड़क-सड़क चलता रहा। कई दिनों के बाद वह आज शान्ता से मिलेगा।

हठात् झमाझम करती वर्षा शुरू हो गई। रास्ते पर भाग-दौड़ मच गई। लोग भाग-भागकर किसी बरामदे में या दुकान के नीचे खड़े हो गये। सामान बेचने वाले पटरियों पर अपने-अपने सामान को सम्भालने में व्यस्त हो गये। कबूतरों का एक झुंड उड़कर जिस ओर जा रहा था, सहसा वर्षा आरम्भ होने के कारण फुर्ती से पलटकर वह दूसरी दिशा में तेजी से उड़ने लगा। रास्ता प्रायः सुनसान हो गया। लेकिन दीपू और शान्ता रुके नहीं।

के सामने चार-पांच गाड़ियां आकर खड़ी हो गईं। जिन लोगों से काफी समय से कोई संपर्क नहीं रहा था, मृत्यु की खबर पाकर वे भी आ गये। दुर्गापुर फोन करने पर भी नीलांजन नहीं मिले। उनकी पार्टी के दफ्तर से पता चला कि वे वहां से भी किसी गांव में चले गये हैं। इतनी जल्दी उनसे सम्पर्क करना सम्भव नहीं था। दीपू किसी काम से बाहर भागता, फिर लौटकर सलाह-मशविरा के लिए स्वजनों के बीच आ जाता। पिताजी के मृत मुंह की ओर देखने का समय भी उसे नहीं मिल रहा था।

२२

कोरी धोती और आसन छोड़कर बहुत दिनों के बाद आज कमीज-पतलून में दीपू बाहर निकला था। ट्राम-बस पर वह सवार नहीं हुआ। क्रीक रोड से निकल कर सर्कुलर रोड से होते हुए मानिकतल्ला जाने के लिए सियालदह की ओर पैदल चल पड़ा। लम्बा दुबला-पतला शरीर।, साफ कमीज-पतलून कीचड़ से बचाकर वह धीरे-धीरे चल रहा था। रास्ते पर बहुत लोग थे, लेकिन वह नितांत अकेला मन के एकाकीपन में सड़क-सड़क चलता रहा। कई दिनों के बाद वह आज शान्ता से मिलेगा।

हठात् झमाझम करती वर्षा शुरू हो गई। रास्ते पर भाग-दौड़ मच गई। लोग भाग-भागकर किसी बरामदे में या दुकान के नीचे खड़े हो गये। सामान बेचने वाले पटरियों पर अपने-अपने सामान को सम्भालने में व्यस्त हो गये। कबूतरों का एक झुंड उड़कर जिस ओर जा रहा था, सहसा वर्षा आरम्भ होने के कारण फुर्ती से पलटकर वह दूसरी दिशा में तेजी से उड़ने लगा। रास्ता प्रायः सुनसान हो गया। लेकिन दीपू और शान्ता रुके नहीं।

दोनों अपने में तन्मय बातें करते हुए चलते गये, चलते गये।

× × ×

दीपू और शांता को मैं अब यहीं पर छोड़े देता हूं। जीवन बड़ा विशाल है। कुछेक घटनाओं के आधार पर इसकी किसी इकाई का पता नहीं चलता। जबतक जीवन रहता है, उसकी कहानियां भी रहती हैं। दीपू और शांताजबतक जीवित रहेंगे, उनकी कहानियां भी चलती रहेंगी। लेकिन कहानीकार को तो कहीं थमना ही होता है।